* ओ३म् *

# त-वचन-संग्रह

( प्रथम पुष्प )

सम्पादक—

**श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज**

कुटि नं० १७८, वानप्रस्थ आश्रम

ज्वालापुर ( जि० सहारनपुर )

प्रकाशक—

**श्री हंसराज आर्य ट्रस्ट, बरेटा**

मुख्य कार्यालय : जाखल मण्डी, जि० हिसार

# ❁ भजन ❁

[ लेखक—श्री काशीनाथ जी मिश्र ]

तुझ से मांगूं मैं तुझी को कि सभी कुछ मिल जाय
सौ सवालों से यही एक सवाल अच्छा है।

मुझको मालूम है तू, जिसपे तवज्जो[1] फ़रमाय
ग़ैरमुमकिन[2] है उसे, अपनी न छाती से लगाय।
यह गवारा नहीं तुझको कि जियादा तड़पाय।
तुझसे हो सकता नहीं यह, उसे फ़ौरन न बुलाय।
तुझसे मांगूं मैं······

वह नहीं मैं जिसे दुनियावी तरक्क़ी बहकाय।
सल्तनतरूएज़मीं[3] की न मेरे जी को लुभाय॥
ख़ैरियत की न मैं दरख्वास्त[4] करूं, जान भी जाय।
तेरी फ़ुरक़त[5] की मुसीबत मेरी हस्ती[6] को मिटाय।
तुझसे मांगूं मैं······

और चीज़ों की तरफ़ किसलिये अब दिल ललचाय।
आशिक़ेज़ात[7] हूँ पर, क्यों नहीं यह ध्यान है आय॥
काश यारब तू मेरा शौक़े विसाल[8] इतना बढ़ाय।
हर घड़ी शेर सदा कान में मेरे यह सुनाय॥
तुझसे मांगूं मैं······

—०—

---

१ ध्यान दे, २ असम्भव, ३ चक्रवर्ती राज्य, ४ प्रार्थना
५ जुदाई, ६ अस्तित्व, ७ सच्चा प्रेमी, ८ मिलने की [illegible]

* ओ३म् *

# सन्त-वचन-संग्रह

## ( प्रथम पुष्प )

●

सम्पादक
श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज
कुटि नं० १७८, वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर
ज़िला सहारनपुर ( उत्तर प्रदेश )

●

पुस्तक-प्राप्तिस्थान
(१) वानप्रस्थाश्रम पुस्तकालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)
(२) गुप्ता एण्ड कम्पनी, टोहाना, जि० हिसार।
(३) गुप्ता एण्ड कम्पनी, खारी बावली, दिल्ली-६

तृतीय बार २००० } वैशाख सं० २०३० वि० { मूल्य १) रुपया

# प्रकाशक का निवेदन

पूज्य श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज वानप्रस्थ आश्रम में पिछले तीस-पैंतीस वर्ष से रह रहे हैं। आपका अधिकतर समय स्वाध्याय और प्रभु चिन्तन में ही व्यतीत होता है इस लिये आपके सत्संग से आश्रमवासियों को बड़ा लाभ प्राप्त होता है। आपने अपनी रुचि के अनुकूल कतिपय सन्तों के कुछ अमृतमय वचनों का संग्रह छः कापियों में किया हुआ था। जो भी इन कापियों को पढ़ता था उसे ही आनन्द और लाभ प्राप्त होता था। कुछ वर्ष पूर्व इस संग्रह का प्रथम पुष्प पूज्य स्वामीजी की स्वीकृति से एक सन्त-वचनानुरागी सज्जन द्वारा छपवाया गया था। जिसे पढ़कर न केवल साधारण जनता ने ही अपितु बड़े २ विद्वान् पण्डितों ने भी इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। इससे उत्साहित होकर शेष पाँच पुष्प भी भिन्न २ सज्जनों द्वारा छपवाये गये। यह प्रथम पुष्प शीघ्र ही समाप्त हो गया। पुस्तक न मिलने पर बहुत से सज्जनों को निराशा होती थी। श्री हंसराज आर्य ट्रस्ट बरेटा जनता की बड़ी सेवा कर रहा है। साथ ही पुस्तकों द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार कर रहा है, अतएव मैंने ट्रस्ट के अधिकारियों को इसे छपवाने की प्रेरणा की और वह कृपा पूर्वक मेरे से सहमत हो गये। पूज्य स्वामी जी की स्वीकृति मिलने पर इसका तीसरा संस्करण उपर्युक्त ट्रस्ट द्वारा छपवाया जा रहा है। पूर्ण आशा है कि जिज्ञासु जन इसके पाठ से आनन्द प्राप्त करेंगे और अपने जीवन को सफल बनायेंगे।

विनीत

बृजलाल गुप्तः
प्रधान आर्य समाज टोहाना,
ज़ि० हिसार

श्रीरामकुमारजी बजाज को सप्रेम भेंट
[illegible]

ओ३म्

# ❀ सन्त-वचन-संग्रह ❀

## ( प्रथम पुष्प )

१. ईश्वर साक्षात्कार के लिये तीव्र पिपासा रखिये और महान् धैर्य तथा संलग्नता रखिये।

२. ईश्वर को कभी न भूलिए, दूसरों की निन्दा न कीजिये, मन तथा इन्द्रियों के आदेश को मत मानिये। कटु शब्द न बोलिये, अधिक भी न बोलिये, एक पल भी व्यर्थ न खोइये।

३. जीवन बहुमूल्य वरदान है, इसका सदुपयोग ईश्वर-साक्षात्कार के लिये कीजिये। भव्य आदर्श के बिना जीवन एक बिना पतवार की नौका है। मुमुक्षुत्व के बिना जीवन तो वनस्पति का जीवन है। ईश्वर के लिये जीओ, तथा ईश्वर का साक्षात्कार करो। सत्संग से बढ़कर कोई नौका नहीं है जो हमें संसार-सागर से दूसरे तट पर निर्भयता से अमृतत्व के तट पर ले जाये।

४. आपके अन्दर ईश्वर छिपा हुआ है, आपके अंदर अमर आत्मा है, आपके अन्दर आनन्द का सागर है। आनन्द की प्राप्ति के लिए अन्दर देखिये। उस आनन्द

को आपने व्यर्थ ही इन नश्वर पदार्थों में खोजा है। आनन्द प्राप्त कर अपनी आत्मा में विश्राम कीजिये।

५. ईश्वर की प्राप्ति के लिए कला, विज्ञान अथवा पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं, उसके लिये तो प्रेम तथा भक्ति से परिप्लावित ऐसे हृदय की ही आवश्यकता है, जो ईश्वर प्राप्ति के लिये ही दृढ़प्रतिज्ञ हो तथा एकमात्र उसी से प्रेम करता हो।

६. जिस तरह शिशु माँ की गोद में पूर्ण सुरक्षा तथा शान्ति पाता है, उसी तरह साधक भी ईश्वर को पूर्ण आत्म समर्पण कर शाश्वत शान्ति तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है।

७. आपके हृदय में अमृत का सागर है। साधना करके उस रस का पान करना चाहिये।

८. मनुष्य पुरुषार्थ द्वारा सब कुछ कर सकता है। आलसी बनकर ईश्वर को न पुकारिये, उठिये साधना कीजिये। क्योंकि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।

९. प्रलोभनों, कठिनाइयों का आक्रमण होने पर ईश्वर आपके चारों ओर संरक्षक व्यूह का निर्माण करेगा। भय न कीजिये, वीर बनिए। धीरतापूर्वक आगे बढ़ते जाइये, डरिये नहीं, आप ईश्वर की कृपा से सफल होंगे।

१०. अपनी आवश्यकताओं को जितना भी कम

कर सकें उतना ही कम कर देना चाहिये ।

११. सभी परिस्थितियों के अनुकूल बन जाइये ।

१२. कभी भी किसी व्यक्ति या वस्तु में आसक्त न होइये ।

१३. नपे-तुले मधुर शब्द बोलिये ।

१४. एक दिन के लिये भी अभ्यास न छोड़िए ।

१५. जीवन अल्प है, मृत्यु का समय अनिश्चित है । श्रद्धा और प्रेमपूर्वक तीव्रता से साधना में लग जाइये ।

१६. ऐसी शिकायत मत कीजिये कि समय नहीं मिलता, व्यर्थ बातचीत को कम कीजिये, ब्राह्म मुहूर्त में नियमित उठिये ।

१७. यदि आप किसी शुभ कार्य को आज ही कर सकते हैं, तो उसे कल के लिए कदापि न छोड़िये ।

१८. अभिमान न कीजिये, सरल तथा नम्र बनिये, सदा प्रसन्न रहिये, चिन्ताओं को छोड़िये ।

१९. उन वस्तुओं से उदासीन रहिये, जिनसे आपको कोई तात्पर्य नहीं है ।

२०. साँसारिक मनुष्यों की संगति तथा बातचीत से दूर रहिये ।

२१. मन का सन्तुलन सदा बनाये रखिये, बोलने से पहले दो बार सोचें, काम करने से पहले तीन बार सोचें। निन्दा, चुगली तथा परदोष दर्शन का परित्याग कीजिए ।

२२. अपने दोषों तथा दुर्बलताओं का पता लगा लीजिये, दूसरों में केवल शुभ ही के दर्शन कीजिये। दूसरों के शुभ गुणों की प्रशंसा कीजिये।

२३. दूसरों से आपको जो हानि पहुँची हो उसे भूल जाइये तथा क्षमा कीजिये। जो आपसे घृणा करे उससे प्रेम करें और उसका कुछ भला अवश्य करें।

२४. काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार को विषधर सर्प समझकर त्यागिये।

२५. विषयसुख को विष्ठा-मूत्र के समान ही हेय समझिये, उनसे आप कभी तृप्ति नहीं पा सकते।

२६. जब बुरी वासनाओं से आक्रान्त हों तो सत्संग तथा जप, प्रार्थना का अवलम्बन कीजिये। शान्ति तथा वीरतापूर्वक बाधाओं का सामना कीजिये।

२७. यदि आप ठीक मार्ग पर हैं तो समालोचनाओं की चिन्ता न कीजिये।

२८. अपने दोषों को स्पष्टतः स्वीकार कर लीजिये। कामनाओं से दुःख बढ़ता है, सन्तोष का विकास कीजिये।

२९. जब कोई व्यक्ति आपको अपमानित करे, गाली दे तथा व्यंग्य बोले, तो क्रोधावेश में न आइये, यह तो शब्दों का जालमात्र है। अपने मन को ईश्वर में स्थिर बनाये रखिये।

३०. जीवन में निश्चित लक्ष्य बना लें, उस पर दृढ़

रहें तथा सावधानीपूर्वक आगे बढ़ते जायें।

३१. ईश्वर के अतिरिक्त किसी के साथ भी घना सम्पर्क न बनाइये, अधिक बातचीत न कीजिये।

३ . आहार, शरीर तथा सम्बन्धियों का विचार कम कीजिये, आत्मा का विचार तथा ध्यान अधिक कीजिए।

३३. मनुष्य में यदि मनुष्यत्व नहीं है, यदि उसमें करुणा, प्रेम, दया, आत्म संयम, सदाचार, शील तथा सत्संग, प्रभु भजन, ध्यान-नम्रता आदि गुण नहीं हैं तो वह पशु ही है।

३४. तीन वस्तुओं का अभ्यास कीजिये—अहिंसा, सत्य, स्वाध्याय। तीन वस्तुओं का त्याग कीजिये—अहंकार, कामना तथा मोह। तीन वस्तुओं को याद कीजिये—मृत्यु, संसार के दुःख तथा ईश्वर। तीन वस्तुओं का अर्जन कीजिये—नम्रता, निर्भयता तथा प्रेम। तीन वस्तुओं का उन्मूलन कीजिए—काम, क्रोध तथा लोभ।

३५. कम लीजिये, अधिक दीजिये। कम बोलिये, अधिक विचार कीजिये। कम खाइये, अधिक पचाइये। कम उपदेश कीजिये, अधिक अभ्यास कीजिये। कम चिन्ता कीजिये, अधिक प्रसन्न रहिये। कम सोइये, अधिक ध्यान कीजिये। लोभ का परित्याग कीजिये, नम्रता का मुकुट पहनिये। सुखी बनिये, ईश्वर में अपनी श्रद्धा को बढ़ाइये, उपासना ध्यान में स्थिर बनिये।

३६. किसी व्रत को लेने पर जीवन की बाजी लगा कर भी उसका पालन कीजिये।

३७. आप बहुमूल्य मुक्ता हैं, आप सुगन्धित पुष्प हैं, सावधान! अपनी शुद्ध सुगन्ध को सुरक्षित रखिये। आध्यात्मिक साधना ही आपका मुख्य कर्त्तव्य है। आध्यात्मिक मार्ग में बढ़ते जाइये, प्रलोभनों में न फंसिये। कभी भी दुर्बलता की भावना को प्रश्रय न दीजिये।

३८. आध्यात्मिक मार्ग में निराशा के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्नति धीमी हो सकती है, परन्तु सफलता निश्चित है।

३९. आप अपने दोष को भले ही याद न करें, परन्तु अपने दोष को स्वीकार कर लेना आपका कर्त्तव्य है। आप स्वयं अपने चित्त की शैतानी को जान नहीं पाते, यह सभी प्रकार की गलतियाँ कर बैठता है, परन्तु करता है चालाकी से। आप इसके विषय में कुछ भी नहीं जानते, यदि आप जानते भी हैं तो यह आपको इस तरह चक्कर में डाल देता है और आप समझने लगते हैं कि आप मन के मालिक ही हैं, इस तरह कदापि न समझिये। यदि कोई मनुष्य आपकी भूल की ओर संकेत करे तो कदापि क्रोधित न होइये, अपितु उस दोष को दूर करने में सावधान हों।

४०. कल्याण का साधन तुरन्त आरम्भ कर दीजिये,

समुद्र के स्नान करने वाले को लहरों से स्तब्ध होने की कदापि प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये ।

४१. शरीर को अधिक कष्ट कदापि न दीजिये । विषयों की तृष्णा ही बन्धन का कारण बनती है । आवश्यक वस्तुओं का सेवन बन्धन का कारण नहीं है ।

४२. साधना द्वारा मनुष्य में अधिक प्रसन्नता, सुख शान्ति, सन्तोष, आनन्द, वैराग्य, विवेक, असंगता, अनासक्ति आदि का विकास होना चाहिए, ये ही आध्यात्मिक उन्नति के लक्षण हैं । ज्योति दर्शन, अनाहत नाद, दिव्य गन्ध आदि आध्यात्मिक उन्नति के परिलक्षण नहीं हैं, इनका उतना महत्व नहीं है ।

४३. घरेलू मक्खी न बनिये, जो कूड़े-कचरे तथा मैले पर ही बैठती है, वहीं बैठना पसन्द करती है । मधु मक्खी के समान बनिये, जो पुष्पों पर बैठकर मधु ग्रहण करना ही पसन्द करती है ।

४४. जांच की घड़ियों में अपने मन को सदा शान्त बनाये रखिये ।

४५. आप स्वयं ही शोक एवं चिन्ता के जगत् का निर्माण करते हैं, कोई व्यक्ति उसे आपके ऊपर नहीं लादता ।

४६. जो अहंता तथा ममता से मुक्त हैं, जिन्होंने इन्द्रियों का दमन कर लिया है तथा जो ध्यान में लीन

रहते हैं, ऐसे पुरुष ही अमर आनन्द, नित्य शान्ति को प्राप्त होते हैं।

४७. जिस प्रकार लोभी मनुष्य धन संचय में बड़ा सावधान रहता है तथा वह एक पैसा भी खर्च करना नहीं चाहता, उसी तरह साधकों को भी चाहिए कि अपने सारे समय को बचाकर ईश्वर की उपासना-ध्यान में लगावें।

४८. संसार के अरण्य में, मोह की विस्तृत छाया में जीव रूपी सांड सो रहा है, वह पाप पङ्क में फंसा हुआ है, अज्ञान उसे हाँक रहा है तथा विषय-भोगों के कोड़े उस पर लग रहे हैं, वह कामना की दृढ़ रज्जु से बंधा हुआ है, तथा व्याधि रूपी मक्खियाँ उसे डंक मारती रहती हैं, यह जीवरूपी साँड दुःखों से कराह रहा है, जन्म-मृत्युरूपी गम्भीर स्रोत में जा गिरा है। साधक का काम अपने अनवरत प्रयास के द्वारा इसको स्वतन्त्र कराना है।

४९. प्रत्येक मृत्यु यह याद दिलाती है, हर घंटी कहती है कि अन्त निकट है। हर दिन आपके बहुमूल्य जीवन के एक अंश को समाप्त करता है, अतः सतत साधना में संलग्न हो जाना चाहिये।

५०. किसी भी परिस्थिति में ईश्वर आपको क्यों न रक्खे, यह आपकी उन्नति के लिये ही है। कभी हतोत्साह न होइये, बाधाओं की चिन्ता न कीजिये, ये सभी

दूर हो जायेंगी। सभी प्रकार के वातावरण में अपने को अनुकूल तथा व्यवस्थित बनाए रखें।

५१. संसार में रहिये, पर संसारी न बनिये, साँसारिकता त्यागिये। सात्विक आहार कीजिये, लहसुन और प्याज का सेवन न कीजिये।

५२. अपने संकल्पों पर दृढ़ रहिये, जरा भी न डिगिये, अविचल रहिये। साँसारिक बातों में न पड़िये। विषयों की बातों से मन विषयमुखी बन जाता है, सदा परमात्मा सम्बन्धी बातें कीजिये मूल धाम को लौट जाइये, वह मूल परमब्रह्म ही है।

५३. अमृतत्व तथा नित्यानन्द की प्राप्ति कौतूहल-पूर्ण साधना से सम्भव नहीं, इसके लिए अनवरत सावधानी तथा प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

५४. साधकों को सब प्रकार के व्यवहार में पूर्णतः सच्चा होना चाहिये। साधक को नम्र, सरल, सहनशील होना चाहिये। अविचल श्रद्धा साधक को असीम के साथ जोड़ देती है। धैर्य उत्साह तथा फौलादी दृढ़ संकल्प से युक्त व्यक्ति ही आध्यात्मिक मार्ग में उन्नत हो सकता है।

५५. जब तरंगें विलीन हो जाती हैं तब आप झील के नीचे के तल को देख सकते हैं, उसी तरह मन की वृत्तियों के विलीन होने पर ही आप आत्मा को देख सकेंगे।

५६. लोहा जब तक आग में रहता है तब तक लाल दहकता रहता है, परन्तु आग से हटा लेने पर वह लाल रंग दूर हो जाता है। उसी प्रकार यदि आप ईश्वरीय आनन्द का स्वाद चखना चाहते हैं तो मन को सदा अन्तर्मुख रखिये।

५७. इन्द्रियों का संयम कीजिये, उन्हें पूर्ण अनुशासन में रखिये, विवेक वैराग्य के द्वारा उनका दमन कीजिये। कष्टों तथा दुःखों को सहने की शक्ति बढ़ाइये, अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिये, मन को अहंकार, कामना, तृष्णा तथा आसक्ति से मुक्त रखिये, मन को कभी भी ढीला न छोड़िये, यदि बच्चे को अनुशासित न करें तो वह बिगड़ जाता है। आपको हर गलती पर मन को दण्ड देना होगा तथा इन्द्रियों को उनके स्थान पर ही रोके रखना होगा, उनको जरा भी खिसकने न दीजिए, जब कभी कोई इन्द्रिय अपना सिर उठना चाहे तो विवेक दण्ड को उठा लीजिये, अभ्यास के द्वारा आत्म-संयम तथा आत्म-शुद्धि को प्राप्त कीजिये।

५८. यदि आप व्यर्थ बातचीत तथा अफवाहों का श्रवण करना बन्द कर दें और दूसरों के मामलों में न पड़ें तो आप अनेक बाधाओं से मुक्त बने रहेंगे।

५६. कभी-कभी मन उपद्रव करेगा, इन्द्रियाँ आपके पैरों को घसीटेंगी, छिपी वासनायें प्रकट होंगी और आपको

संतप्त करेंगी। वीर बनिये, अडिग रहिये, इन बाधाओं का धैर्य से सामना कीजिये।

६०. बहस करना छोड़िये, मौन रहिये, दिल बहलाने के लिए व्यर्थ बातचीत तथा विचारों में न फंसिये, गंभीर बनिये, ईश्वर के विषय में ही चिन्तन, बातचीत कीजिये।

६१. वासनाएं बहुत ही शक्तिशाली हैं, इन्द्रिय तथा मन बहुत ही उपद्रवी हैं, बारम्बार इनके संग्राम में विजय प्राप्त करना होगा। यही कारण है कि आध्यात्मिक मार्ग को छुरे की धार बतलाया गया है। प्रबल निश्चय तथा लौह-संकल्प वाले व्यक्ति के लिए कोई कठिनाई नहीं है।

६२. कामना शान्ति की शत्रु है। कामना ही पुनर्जन्म तथा सभी प्रकार के दुःख शोक आदि का कारण है। कामना से ही विभिन्न प्रकार के संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं। कामना के जाल को विवेक द्वारा काट दीजिये। मन को शुद्ध बनाइये और उसे परमात्मा में लगा दीजिये तथा नित्यानन्द के अमर धाम को प्राप्त कीजिये।

६३. आत्म-साक्षात्कार के महान् आदर्श को किसी साँसारिक पदार्थ की प्राप्ति अथवा किसी को प्रसन्न करने के लिए त्याग देना महान् लज्जा की बात है। अपनी आंखें खोलिये, इस जगत् की नश्वरता की नग्नता को

देखिये, सब कुछ क्षण-भंगुर है, परमेश्वर को जानकर सदा सुखी रहिये।

६४. प्रकृति के विरुद्ध चलकर ही मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। जिस तरह मछली धारा के विरुद्ध तैरती है इसी तरह आपको भी साँसारिक प्रवाह के विरुद्ध चलना होगा।

६५. जो मनुष्य स्वार्थी और कृपण है, जिसका हृदय उदार नहीं है और भजन, ध्यान सत्संग में जिसकी रुचि नहीं, उसका जीवन व्यर्थ है। यदि मनुष्य में अभिमान, कामना तथा अहंकार का लेश भी रहेगा तो ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

६६. बिना बादल के वर्षा नहीं, बिना वर्षा के उपज नहीं, इसी प्रकार बिना ईश्वर भजन के सुख आनन्द कहाँ?

६७. अधिक पुस्तकें पढ़ने से कोई लाभ नहीं, आँखें बन्द कर लीजिये, इन्द्रियों को समेट लीजिये, मन को निस्तरंग बना लीजिये, हृदय में गहरी डुबकी लगाइये, फिर अपरोक्ष ज्ञान होगा और सारे मानसिक सन्ताप दूर हो जायेंगे।

६८. हृदय में विभासित परमात्मा में ध्यान के द्वारा विश्वास प्राप्त करके ही आप सुख, आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। साँसारिक पदार्थों से जो सुख मिलता है वह सुख

नहीं, वह तो विष भरी मिठाई है।

६६. आप अजर-अमर आत्मा हैं। ध्यान के द्वारा निज आत्मा का साक्षात्कार कीजिये। मन आपको ठगता तथा प्रलोभित करता है, इस महान् वैरी मन को वश में कीजिये और इसे मित्र बनाइये।

७०. आत्मा में गुप्त खज़ाना है उसे खोजिये, वह आपके हृदय में ही है। खोजने से पहले सारी मोह-ममता का त्याग कीजिये, आप संसार तथा ईश्वर दोनों को एक साथ नहीं पा सकते।

७१. दूसरों के साथ अधिक न मिलिये, अत्यधिक मिलने-जुलने से मन में ईर्ष्या का समावेश हो जाता है और मन चंचल रहता है।

७२. दूसरों ने आपके प्रति जो भूल की हो उसे शीघ्र भूल जाइये तथा क्षमा कर दीजिये।

७३. आध्यात्मिक साधक के लिए प्रशंसा तथा सम्मान विष के समान है। अपमान तथा अनादर जिज्ञासु के लिये आभूषण हैं।

७४. प्रतिज्ञा करने में ढीला बनिये, परन्तु पालन करने में जल्दी कीजिये।

७५. एक बार अपनाई हुई अपनी साधना में टिके रहिये, उससे डिगिये नहीं, अपनी साधना में स्थिर रहिये। याद रखिये कि लुढ़कते बेलन से कोई विशेष कार्य

नहीं बन पाता। आपको दृढ़-संकल्प बनना चाहिये, किसी वस्तु के लाभ व हानि का विचार अच्छी तरह से एक बार, दो बार, तीन बार कर लेना चाहिये। फिर एक बार प्रतिज्ञा कर लेने पर उसे बदलिये नहीं, हर हालत में उसे पूर्ण कीजिये। इससे आपका आत्म-बल बढ़ेगा।

७६. नियम के पालन में जरा भी ढिलाई न कीजिये, ईश्वरीय मामलों की हंसी न उड़ाइये। आपको गम्भीर होना चाहिये, अन्यथा आपकी उन्नति सम्भव नहीं।

७७. प्रत्येक व्यक्ति के स्वतः पुरुषार्थ करना होगा। ईश्वर भी किसी को मोक्ष प्राप्त नहीं करा सकता। पुरुषार्थ ईश्वर स्वरूप है, पुरुषार्थ से ही आप ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

७८. आपको अपनी सम्पूर्ण मानसिक दुर्बलताओं से मुक्त होना चाहिये। भय, चिन्ता, भ्रान्ति से मुक्त बनिये, तभी आप वास्तव में सुखी होंगे।

७९. समय का अपव्यय न कीजिए, साधकों के लिए समय बहुमूल्य धन है। एक मिनिट भी व्यर्थ न खोइये। ध्यान कीजिये, साक्षात्कार कीजिये, अमृतरस का पान कीजिये।

८०. अपने को छिपाये रखिये। अपनी योग्यता का प्रदर्शन न कीजिये। नाम तथा सम्मान की परवाह न

कीजिये। नाम तथा यश को तृण, मल, धूली तथा विष के समान समझिये, तभी आपको शान्ति मिलेगी।

८१. यह जगत् दुःखमय है। मन प्रतिक्षण प्रलोभित करता है तथा धोखा देता है। मन की भ्रांति के कारण ही दुःख को सुख समझ बैठते हैं, गम्भीरतापूर्वक विचार कीजिये। यह जगत् (ईश्वर रहित) अग्नि का गोला है। इसके सभी सुख प्रारम्भ में मधुर दीखते हैं परन्तु अन्त में विषाक्त निकलते हैं।

८२. इन्द्रियाँ हर क्षण मनुष्य को धोखा देती हैं, वे इन्द्रियाँ बहुत ही बलवती हैं तथा बुद्धिमान् लोगों को भी बलात् वशीभूत कर लेती हैं। ये क्षणिक सुख देती हैं परन्तु वह सुख नित्य दुःख, शोक, व्याकुलता तथा श्रम से युक्त रहता है।

८३. संकल्पों को दृढ़ तथा सबल बनाइये। एक बार निवृत्ति मार्ग ग्रहण कर लेने पर घर जाने की बात न सोचिये। मन की स्थिरता, साहस तथा जीवन में निश्चित उद्देश्य बनाए रखिये।

८४. विषयों के आकर्षण तथा अन्य तरह-तरह के बन्धन मनुष्य को इस संसार में फंसा देते हैं। सब आकर्षणों तथा बन्धनों को तोड़ देना और त्याग देना ही वास्तविक संन्यास और वानप्रस्थ है। जो मनुष्य आकर्षण तथा बन्धन से मुक्त है वही असीम सुख तथा परमानन्द

का उपभोग करता है।

८५. साधक को पूरी की पूरी साधना स्वयं ही करनी होगी केवल जादू से तो आत्म-साक्षात्कार होगा नहीं।

८६. सच्चाई के साथ स्वयं ही अपनी मुक्ति के लिये प्रयत्नशील बनिये। गुरु तो केवल पथ-प्रदर्शन करेगा। कल्याण मार्ग पर तो आपको स्वतः ही बढ़ना होगा।

८७. हृदय की शुद्धता से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। शुद्धता साधक योगी के लिये मुक्ता है, ज्ञानी का वह सर्वोत्तम खजाना है, भक्त का सर्वोत्तम धन है। यदि आप प्रभु का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो आपका मन शुद्ध होना चाहिये। जब तक मन सारी कामनाओं, तृष्णाओं, चिन्ताओं, मोह, अभिमान, राग-द्वेषादि को निकाल नहीं फेंकता, तब तक वह परम शान्ति तथा विशुद्ध आनन्द के अमर धाम में प्रवेश नहीं कर सकता।

८८. मन की तुलना एक बगीचे से की जा सकती है। जिस तरह बाग लगाने से पहले भूमि को जोतते, खाद देते तथा पानी देते हैं। उसी प्रकार आप अपने हृदय में से काम, क्रोध आदि मलों को दूर कर, उसे दिव्य विचारों से सिंचित कर भक्ति-पुष्प को विकसित कर सकते हैं। यदि आप नित्यप्रति अपनी थाली साफ न करें, अथवा कमरे में झाड़ू न दें, तो वे गन्दे हो जाते हैं। मन के विषय में भी यही बात है। यदि नियमित

सत्संग, स्वाध्याय, भजन, ध्यान से इसे साफ न किया जाय तो यह भी मलिन, गन्दा हो जाता है।

८६. कष्ट उठाये बिना सफलता सम्भव नहीं, आध्यात्मिक मार्ग में आनेवाली प्रत्येक कठिनाई साधक को अधिक सबल बनने के लिये एक सुअवसर होता है।

६०. हे जिज्ञासु बनो! पीछे न देखिये, आगे बढ़ते जाइये। विजयी बनिये, शान्ति का मुकुट पहनिये तथा देश-काल से परे अमर आनन्द को प्राप्त कीजिये।

६१. तोड़िये तथा जोड़िये, अर्थात् मन को संसार से तोड़िये तथा ईश्वर से जोड़िये, यही धर्म का और सारी आध्यात्मिक साधनाओं का सारांश है।

६२. ईश्वर में अविचल श्रद्धा तथा सद्ग्रन्थों और वेदशास्त्रों में अडिग श्रद्धा बनाये रखिये, तभी आप ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। हृदय की शुद्धता ईश्वर प्राप्ति का द्वार है। इन्द्रियों और मन को वश में कीजिये, ध्यान कीजिये तथा उपनिषदों के ज्ञान रस को छक कर पान कीजिये। थोड़ा खाइये, थोड़ा सोइये, थोड़ा बोलिये अधिक ध्यान कीजिये तथा ईश्वर का साक्षात्कार कीजिये।

६३. उठिये वीर बनिये, प्रसन्न रहिये। ईश्वर पर निर्भर रहिये, अन्दर से शक्ति तथा बल प्राप्त कीजिये।

६४. जो साधक लापरवाही के कारण यम-नियमों की अवहेलना करता है, वह आध्यात्मिक जीवन में कदापि

उन्नति नहीं कर सकता।

९५. हर कठिनाई ईश्वर में आपकी श्रद्धा की परख के लिये आती है।

९६. आपके हृदय की गहराई में अमूल्य आत्म-मोती छिपा हुआ है। आत्मा को जान कर सुखी हो जाइये। गम्भीर ध्यान के द्वारा हृदय के प्रकोष्ठ में गोता लगाकर इस मोती को प्राप्त कर लीजिये।

९७. अहंकार को कुचल डालिये, अज्ञान के पर्दे को फाड़ डालिये, मन पर काबू पा लीजिये, इसे एकाग्र कर लीजिये तब प्रभु का साक्षात्कार कीजिये।

९८. जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में सुखी रहिये। ईश्वर से प्रार्थना कीजिये, ध्यान कीजिये, मोक्ष की इच्छा रखिये तथा वैराग्यवान् बनिये तभी आप ईश्वर का साक्षात्कार करेंगे। जितना ही अधिक आप संसार से विरक्त बनेंगे, उतना ही अधिक ईश्वरीय आनंद का अनुभव होगा। जितनी ही आपके हृदय की सांसारिकता दूर होगी, उतनी ही अधिक आप में ईश्वर-प्रेम की इच्छा बढ़ेगी।

९९. विद्वता एक वस्तु है तथा साक्षात्कार दूसरी वस्तु है।

१००. मन, वचन तथा कर्म में शुद्ध होना, सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहना, मोह रहित होना, सदा ईश्वर को याद करना यही साधना का सारांश है। साधना में बहाना

करने अथवा किसी प्रकार का कारण खोज कर छुट्टी पाने से लाभ न होगा।

१०१. सांसारिक बातें आध्यात्मिक उन्नति में बड़ी बाधक हैं।

१०२. पेटू, बातूनी, इन्द्रियपरायण, आलसी तथा हठी व्यक्ति ब्रह्मज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता।

१०३. बल में भीम की भांति बनियें, शुद्धता में हिमालय की बर्फ की भांति शुभ्र बनिये, धैर्य में वसुन्धरा की भांति बनिये।

१०४. धीर बनें, उत्साही बनें, जितनी शक्ति हो करें, शेष को ईश्वर के अर्पित कर दें, उसी पर अवलम्बित रहें, वह आपकी रक्षा करेगा।

१०५. अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील बनिये। कोई भी दूसरा आपको नहीं बचा सकता, आप स्वयं ही अपने को बचा सकते हैं। अपने प्रयास के द्वारा ही आप को मुक्ति प्राप्त करनी होगी।

१०६. किसी वस्तु से किसी कारण से भी भय न कीजिये, आप अजर-अमर आत्मा हैं, शान्ति बनाये रखिये।

१०७. जिज्ञासु जन! जागिये, साधना कीजिये, सिर पर मृत्यु खड़ी नाच रही है।

१०८. उठो, जागो और अधिक न सोओ, भय का त्याग करो, कामनाओं का परित्याग करो, एक मिनट भी

व्यर्थ न खोओ, ईश्वर पर निर्भर रहो।

१०६. इस आध्यात्मिक भाव को बनाये रखिये कि मैं अपने जीवन को भले ही त्याग दूँ, परन्तु आध्यात्मिक मार्ग से किञ्चन्मात्र भी विचलित नहीं हो सकता, मैं अपने इस व्रत को कदापि न तोड़ूंगा।

११०. निरभिमानता, नम्रता तथा शुद्धता, ये छायादार फल देने वाले वृक्ष हैं, जो आध्यात्मिक मार्ग के साधकों को छाया प्रदान कर उनके श्रम का निराकरण करते हैं और फल प्रदान कर उन्हें तृप्त करते हैं।

१११. आत्म-समर्पण तथा प्रभु-प्रेम पदत्राण हैं जिन्हें पहन कर साधक आध्यात्मिक मार्ग के कंटकों तथा बाधाओं से बच जाता है।

११२. ईश्वर के ऊपर किसी एक का अधिकार नहीं है। प्रत्येक मुमुक्षु साधक ईश्वर के ऐश्वर्य का उपभोग कर सकता है।

११३. आप स्वरूपतः अमर हैं। स्वयं को मार्ग के लिए अनुकूल बनाइये। बुद्धिमत्ता पूर्वक जीवन यापन कीजिये, अन्दर खोजिये, उद्देश्य प्राप्ति के लिए तल्लीन रहिये।

११४. इन्द्रियों के दमन, राग-द्वेष के शमन, सभी प्राणियों के लिए करुणा तथा ध्यान-अभ्यास के द्वारा हम प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

११५. स्वार्थ, अभिमान तथा दम्भ ये आध्यात्मिक मार्ग के महान् कंटक हैं।

११६. उन्हीं लोगों के लिए ईश्वर का साक्षात्कार सुलभ होता है जो साहसी, वीर, उत्साही, दृढ़व्रती, ध्यान में नियमित तथा लक्ष्य में तल्लीन रहते हैं।

११७. दूध में मक्खन है, परन्तु मंथन द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है, उसी तरह साधना द्वारा ही ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव है। साधना ही वास्तविक धन है।

११८. जिस प्रकार तांबे को रसायन द्वारा सोने में बदला जा सकता है, उसी प्रकार ध्यान तथा विचार द्वारा निकृष्ट मन शुद्ध मन में परिणित किया जा सकता है। नियमपूर्वक ध्यान से मन शान्त तथा स्थिर होता है, आनन्द का अनुभव होता है तथा साधक ईश्वर के सम्पर्क में आ जाता है।

११६. सांसारिक क्लेशों से मुक्त होने के लिए ध्यान ही एक मात्र साधन है। प्रतिकूल परिस्थितियों में ध्यान का अभ्यास करते रहने से आप सबल बन जायेंगे।

१२०. जिसने दम तथा मन की शांति को प्राप्त कर लिया है उसके सुख के सामने सारे संसार का सुख नहीं के समान है।

१२१. जब मन आत्मा का आज्ञाकारी नौकर बन

जावे तभी वास्तविक शान्ति तथा मुक्ति प्राप्त हो सकती है, तब साधक शान्ति में निवास करता है तथा आत्म-राज्य में शाश्वत सुख प्राप्त करता है।

१२२. बल ही जीवन है, निर्बलता मृत्यु है। परमात्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करके सारी दुर्बलताओं को नष्ट कर डालिये, आत्मिक बल ही परम कल्याण की कुंजी है।

१२३. यदि शीघ्र साक्षात्कार करना है तो गहरा गोता लगाइये। मन के साथ उग्र संघर्ष न कीजिये, किसी वस्तु की कामना न कीजिये और बार बार ध्यान कीजिये।

१२४. तुम्हें केवल इच्छाओं के जाल को, जो कि तुम्हें फँसाये हुए है, तोड़ डालना है। तुमने जो कुछ किया है उसे मिटाना है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि ईश्वर-प्राप्ति के लिये तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, अपना जेलखाना बनाने के लिये तुमने जो कुछ किया है केवल उसे मिटा दो फिर तुम्हें ईश्वर का साक्षात्कार होगा।

१२५. वास्तविक बात यह है कि मनुष्य की सारी आसक्तियाँ, सारी वासनाएँ, राग-द्वेष और सारी मोह-ममता ही उसके लिए जंजीर और बेड़ियाँ बनी हुई हैं। ये ही उसे बाँधती हैं और ये ही ईश्वर दर्शन से वंचित रखती हैं, ये ही उसका कारागार हैं। मनुष्य की कामनाएँ ही उसे बन्धन में डालती हैं।

१२६. शुद्ध अन्त:करण वाले ही धन्य हैं, क्योंकि उन्हें ही प्रभु के दर्शन होंगे। हृदय की शुद्धता का अर्थ है संसार के सब पदार्थों, सब व्यक्तियों की आसक्ति से अपने को मुक्त कर लेना।

१२७. यह बात स्मरण रक्खो कि ज्यों-ज्यों कामनाएँ बढ़ती जाती हैं त्यों-त्यों मनुष्य तुच्छ होता जाता है।

१२८. संसार के सुख पोस्त के डोडों के समान हैं, जो कि हाथ में आते ही बिखर जाते हैं, अथवा नदी पर बरफ गिरने के समान हैं जिसकी सफेदी क्षण भर रह कर सदा के लिए लुप्त हो जाती है, अथवा इन्द्र धनुष के मनोहर रूपों के तुल्य हैं जो तूफान के आते ही विलीन हो जाते हैं।

१२९. अरे मनुष्य! तू ईश्वर का पुत्र है केवल शरीर के केन्द्र में रहना छोड़ दे। जब चर्म (शरीर) दृष्टि छूट जायेगी, तब ईश्वर दृष्टि अपने आप हो जायगी।

१३०. प्रभु-स्मरण के बिना जीवन एक दाह-क्रिया के समान है।

३१. जो ईश्वर से प्रेम करते हैं, उसका भजन, ध्यान करते हैं, वे ही जीवित हैं बाकी सब मुर्दे जैसे ही हैं।

१३२. मुँह बन्द कर और अपने प्यारे के नाम के सिवा कुछ मत बोल।

१३३. जैसे समुद्र नदियों को अपने भीतर समेट लेता है वैसे ही जब मनुष्य अपनी इच्छाओं को अपने भीतर समेट लेता है तभी वह शांत होता है इसके सिवा और सब रहते हैं अशांत।

१२४. एकमात्र अपराध है ईश्वर को भूल जाना।

१२५. मृत्यु यह नहीं पूछती कि तुम्हारे पास क्या है किन्तु यह कि तुम हो क्या? जीवन का प्रश्न यह नहीं कि मेरे पास क्या है किन्तु यह कि मैं क्या हूँ।

१३६. यदि तुम यहाँ पर यश, सुख, भोग-विलास अथवा ऐसी ही चीजें अपने लिए खोजते रहोगे तो चलते समय इन्हीं चीजों के चित्र तुम्हारे सामने प्रकट होंगे, वे तुमसे चिपट जावेंगे और तुम्हें उनको साथ ले चलना होगा, लाजामी तौर पर यही चित्र और यही वृत्तियाँ जिन्हें तुम स्वयं अपनी इच्छा से बनाते हो, चारों ओर इकट्ठी हो जावेंगी और तुम्हारे लिए एक नया शरीर तय्यार कर देंगी, जो पुनः जीवन और सुख की पुकार मचायेगा। सावधान! कहीं वह शरीर आनन्ददायक बनने के बदले तुम्हारा कारागार न बन जाय।

१३७. अपने मन और बुद्धि को सुखदायी स्मृतियों से, विचारों के सुखमय तारतम्य से भर दो जिससे वह सदा आह्लादकारक विचारों और दिव्य भावनाओं में डूबा रहे।

१३८. संसार में अपना कुछ भी नहीं है। यदि हम शांति चाहते हैं तो हमें अपनी देह को भी प्रभु का समझना चाहिये।

१३९. संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिस पर हम भरोसा कर सकें, वे मनुष्य ही ईश्वर की कृपा के भागी होते हैं जो केवल ईश्वर पर श्रद्धा, भरोसा रखते हैं।

१४०. भविष्य की चिंता मत करो, भय को हृदय में स्थान मत दो, निर्भीक बनो, तुम्हें कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता।

१४१. निराशा बड़ी भारी दुर्बलता है इससे बचो।

१४२. आप लोगों को अपनी बातचीत में कभी किसी व्यक्ति विशेष की चर्चा नहीं करनी चाहिये।

१४३. तुम रात-दिन बड़े उत्साह और उमंग से सुख को ढूँढने में लगे हुए हो, परन्तु इस काम में तुम्हें सदैव निराशा ही होती है। ऐसे बेसमझ मत बनो, जहाँ सुख है वहीं उसे खोजो, इन्द्रियों के विषयों में सुख मत ढूँढो। हे इन्द्रियों के गुलामो! अपनी इस सुख की निष्फल बाहरी खोज को छोड़ो, अमृतत्व का महासागर तुम्हारे भीतर है अपने भीतर घुसो और पेट भर उस रस का पान करो।

१४४. अपने वास्तविक स्थान पर अच्छी तरह डटे रहो, निन्दा-स्तुति की वहाँ पहुँच ही नहीं, साधारण सुख-

दुःख से वहाँ कोई लाभ-हानि नहीं होती।

१४५. ज्यों ही आप इन बाहरी पदार्थों को पकड़ना और अपनाना चाहते हैं उसी क्षण वे आपको छलकर, धोखा देकर आपके हाथ से निकल जाते हैं। किन्तु जिस क्षण आप इनकी ओर से पीठ फेरेंगे और प्रकाशकों के प्रकाशस्वरूप आनन्द घन भगवान् की ओर मुख करेंगे, उसी क्षण परम कल्याणकारक अवस्थाएँ आपका स्वागत करेंगी, यही दैवी विधान है।

१४६. जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि उनका आनन्द कुछ विशेष परिस्थितियों पर अवलम्बित है वे देखेंगे कि सुख का दिन उनसे दूर ही हटता जाता है।

१४७. आत्म-अनुभव कोई बाहर से प्राप्त होने वाला पदार्थ नहीं है। आपको ईश्वर दर्शन के लिये और कुछ करने की आवश्यकता नहीं, केवल अपने चारों ओर इच्छाओं की जो अंधकारमय दीवारें तुमने बना रखी है उन्हें तोड़ डालना है।

१४८. इच्छा एक बीमारी है वही मनुष्य को दुविधा में रखती है।

१४९. आप स्वयं अपना आदर करो, तब संसार आपका आदर करेगा।

१५०. मनुष्य का जन्म इसलिये नहीं हुआ कि जरा-जरा सी बात से डरे और चिन्ता में डूबा रहे, मेरा

क्या बनेगा, यह बात कैसे होगी, वह कैसे पूरी होगी। उसमें कम से कम इतना आत्म सम्मान तो होना चाहिये, जितना कि पक्षियों और वृक्षों में पाया जाता है वे तूफ़ान अथवा धूप आदि के आने पर घड़बड़ाते तो नहीं।

१५१. जो ढूँढता है वही पाता है। जिसमें उस प्रभु के मिलने की तीव्र, न बुझने वाली प्यास हो, जो उसके लिए कष्ट सहने को तय्यार हो वही प्रभु दर्शन करता है।

१५२. वास्तव में वही प्रसन्न है जिसने प्रसन्नता का अनन्त स्रोत अपने भीतर पा लिया है। वह सब अवस्थाओं में निश्चित है।

१५३. सफल वही है जो निडर है। भय मनुष्य का घातक शत्रु है। यह वैरी हमारे स्वास्थ्य को भी बिगाड़ देता है और हमारी सफलता में रुकावट डालता है। उन्नति उस योद्धा के चरण चूमती है जो इस शत्रु पर विजय पाता है। हमें न रोगों से डरना चाहिये और न ही मृत्यु से, न धन आदि की हानि से।

१५४. मनुष्यों पर निर्भर रहना व्यर्थ है। देने वाला, रक्षा करने वाला एक भगवान् है।

१५५. सच्ची शान्ति उसे मिलती है जिसने अपने जीवन की नाव भगवान् के सुपुर्द कर दी है।

१५६. अरे जिज्ञासुओ ! तुम महान् कार्य के लिए

जगत् में आये हो, गीदड़ भभकियों से भयभीत न हो जाना। बड़ी से बड़ी कठिनाई में भी अपना साधन जारी रक्खो।

१५७. मनुष्य तभी तक मनुष्य है जब तक कि वह प्रकृति से ऊपर उठने के लिए संघर्ष करता है। यह प्रकृति दो प्रकार की है आन्तर और बाह्य—बाह्य प्रकृति को अपने वश में कर लेना बड़ी अच्छी और गौरव की बात है पर अन्तःप्रकृति पर विजय पा लेना अधिक गौरव की बात है। चाँद और तारों का ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है पर मनुष्य की वासनाओं, इच्छाओं को नियमन करने वाले नियमों तथा अपने को जान लेने, साक्षात्कार कर लेने के साधनों को जान लेना उससे अनन्त गुणा अधिक गौरवपूर्ण है।

१५८. हम तोते के समान कई बातें बोल जाते हैं पर उनमें से एक को भी कार्य में नहीं लाते। केवल मुख से कह देना और आचरण में न लाना, यह हमारा स्वभाव हो बन गया है।

१५९. सांसारिक सुख अपने सिर पर दुःख का मुकुट पहने आता है जो मनुष्य उस सुख को अपनायेगा, उसे दुःख को भी अपनानाना पड़ेगा।

१६०. जन्म-मरण से छुटकारा पा लेना ही मानव-जीवन का लक्ष्य है। जिसने इस जीवन में अपने परम

लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है उसी का जीवन सार्थक है नहीं तो इस जीवन का क्या लाभ ?

१६१. संसार की उलझनें कभी भी समाप्त नहीं होंगी, इसलिये इनको सुलझाने का प्रयत्न ही छोड़ दो। मनुष्य यह सोचता है कि बस यह काम पूरा होते ही मैं प्रभु-भजन में लग जाऊँगा। मनुष्य की यह धारणा बिल्कुल गलत है, इन उलझनों को सुलझा कर तुम संसार से उपरत हो सकोगे, इस शेखचिल्ली की भांति मिथ्या कल्पना को दिल से निकाल दो, क्योंकि यह उलझनें तो अनादि काल से इसी तरह उलझी हुई आ रही हैं इन्हें सुलझाने वाले स्वयं भी इनमें उलझते गये और इसी अवस्था में काल के ग्रास हो गये हैं। यदि प्रभु को पाना है तो जिस अवस्था में हो उसी में साधन आरम्भ कर दो।

१६२. शरीर का कलंक आलस्य है, पहरेदार का कलंक असावधानी है, नारी का कलंक पतिव्रत का उल्लंघन है, धनी का कलंक कृपणता है परन्तु सभी कलंकों से बढ़कर कलंक है मानव का अज्ञान, अपने स्वरूप का अज्ञान ही सबसे बड़ा कलंक है, इस कलंक के धब्बे से यदि बचना चाहते हो तो अपने स्वरूप की स्मृति में लगो।

१६३. यदि पात्र में छिद्र है तो फिर तुम चाहे जितना भी जल उसमें डालते जाओ, सब निकल जायगा।

वैसे ही अन्तःकरण में कोई दोष है जिससे आप सत्संग में सुनी बातों को संभाल कर नहीं रख सकते, तो कितने ही उपदेश सुनते रहो, तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। इस पर आचरण करना सीखो, इन पर चलना सीखो।

१६४. जो अपनी परिस्थिति की चादर में हाथ-पैर सिकोड़ कर सोना नहीं जानते, वे ही काम, क्रोध आदि के मच्छरों से सताये जाते हैं, हर समय दुःखी बने रहते हैं, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है, छोटी चादर और देह बड़ी। इसलिये अपनी छोटी चादर में सिमट कर सोना सीखो। यदि सुखी रहना चाहते हो तो अपने को समेटना सीखो, अपनी आवश्यकताओं को कम करो, चादर कभी भी पूरी अर्थात् बड़ी नहीं होने की।

१६५. तुम बीस वर्ष तक अध्यात्म-पथ के पथिक बने रहो, यदि क्षण भर के लिये भी बुराई में फंस गये तो बड़ी हानि होगी। मकान बनाने में वर्षों लग जाते हैं लेकिन उसके नष्ट करने के लिये एक दिन काफी है।

१६६. तुम्हें कोई भला या बुरा शब्द कह देता है, तो तुम इतने भड़क क्यों उठते हो ? यह शब्द क्या है ? आकाश के गुण हैं। तुम इनसे प्रभावित न होओ तो यह आकाश में लीन हो जावेंगे, तुम स्वयं इन्हें अपना लेते व अपने पर लगा लेते हो, तभी तुम में भड़क उठने की भावना जाग पड़ती है।

१६७. तुम अपनी भूलों को स्वीकार ही नहीं करते, यदि स्वीकार करो तो सुधारक अनेक मिल जायेंगे। भूला हुआ बालक जब अपनी भूल समझकर बीच बाजार रोता है तब सेवा समिति वाले अथवा कोई और सज्जन उसे उसके घर पहुँचा देते हैं। तुम भी अपनी भूलों को मानो, पश्चात्ताप करो, तो कोई न कोई तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा ही देगा।

१६८. साधक की कोई भी साधना सफल नहीं हो सकती जब तक वह साधना में सावधान न रहे। आध्यात्मिक साधना तो नियम समय पर की जाती है परंतु सावधानी चौबीसों घंटे, हर क्षण रखनी चाहिये।

१६९. किसी भी कायिक, वाचिक अथवा मानसिक कार्य के करने में इस बात की सावधानी चाहिये कि मेरे अमुक कार्य अथवा संकल्प से किसी को हानि नहीं पहुँचेगी, और अपने लिए भी जांच कर लें कि मेरी आध्यात्मिक उन्नति में बाधा तो नहीं पड़ेगी।

१७०. प्रभु-दर्शन की इच्छा वालों को पूर्णरूप से ईश्वर विश्वासी होना चाहिये, अटल श्रद्धा और अटूट विश्वास से मन भरपूर हो। वह है और सर्वत्र व्यापक है। हमारे प्रत्येक भाव को देखता है और यह धारणा भी आवश्यक है कि परमात्मा ही हमारी माता है और माता जो कुछ करती है हमारे कल्याण के लिये ही करती है।

जिस भी अवस्था में वह हमें रक्खे उसी में हमें प्रसन्न रहना चाहिये।

१७१. माता कभी भी अपनी सन्तान को दुःखी देखना नहीं चाहतीं, वह बच्चे को दूध पिलाती हैं, अच्छे अच्छे भोजन खिलाती हैं, सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहनाती हैं, चूमती हैं, प्यार करती हैं, बच्चा रोगी हो जाय तो मिठाई उसके हाथ से छीन लेती हैं और कड़वी दवाई नहीं पीना चाहता, तब चपत भी लगा देती हैं।

जब भक्त ने परमात्मा को अपनी मां स्वीकार कर लिया, तो फिर उसकी दृष्टि में उस भक्त पर कोई कष्ट आता है तो भक्त को यही विश्वास होना चाहिये कि उसका कल्याण इसी में था वह रोये क्यों, वह हाहाकार क्यों करे, उसके अन्दर से तो यह ध्वनि निकलनी चाहिये, कि—

राजी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रज़ा है।
यहाँ यूं भी वाहवाह है और वूं भी वाहवाह है॥

१७२. हमें कुछ पता नहीं होता कि हमारा कल्याण किसमें है। हमारी आंख बहुत दूर तक नहीं देख सकती, हाँ प्रभु की आँख बहुत दूर तक देख सकती है। वह जानता है कि हमारा कल्याण किसमें है, इसलिये भक्त के अन्दर यह धारणा पक्की होनी चाहिये कि प्रभु सदा हमारा कल्याण करता है अतएव जिस हालत में वह रक्खे

उसी में प्रसन्न रहने का स्वभाव बनाना चाहिये।

१७३. जितनी आवश्यकताएं और इच्छाएं कम करोगे, उतने ही अधिक प्रभु के निकट होते जाओगे।

१७४. ज़बान का स्वाद जब भक्त को घेर लेता है तब भक्ति रोने लगती है। भक्त भगवान् से दूर हो जाता है।

१७५. जब तक संसार हमारे मन में बसा हुआ है तब तक भगवान् दूर प्रतीत होते हैं जैसे ही संसार हटा, तो मन में प्रभु का प्रकाश और आनन्द आया।

बुल्ला शाह ने एक बार प्याज की पनीरी लगाते हुए कहा था—

बुल्या रब दा की पावना।
एधरों पुट्टना ओधर लावना॥

१७६. ऋषियों तथा शास्त्रों का यह कथन सत्य है कि जब तक जीवन नैया का लंगर विषयों के दृढ़ खूँटे से बंधा हुआ है तब तक आप लाख ज्ञान के चप्पू लगाते रहें, सब व्यर्थ। अपने को खूँटे से पृथक् करो, त्याग करो, वैराग्य करो, तभी जीवन-नय्या पार हो सकेगी। इस पर दृष्टान्त यह है। मथुरा से देहली जाने के लिए छः आदमी किश्ती में बैठे, सारी रात किश्ती चलाते रहे, परन्तु प्रातः देखा तो उसी जगह नौका खड़ी है, कारण यह था कि नौका का रस्सा खूँटे से बंधा हुआ था उसे नहीं खोला। यही अवस्था जीवनरूपी नय्या की है।

१७७. भगवान् से मिलने में देरी हो रही है इसमें भगवान् की त्रुटि नहीं, हमारी ही कमी है। भगवान् में अनन्य प्रेम होने से भगवान् मिलते हैं। भगवान् से मन छूट जाए, तब उस समय ऐसी तड़प होनी चाहिये जैसे कि जल बिना मछली तड़पने लगती है।

१७८. जो भगवान् का भजन ध्यान करता है उसकी भगवान् सहायता करते हैं। उसे अपनी ओर खींचते हैं। इसलिए निराश नहीं होना चाहिये। बल्कि यह विश्वास रखना चाहिये कि भगवान् का हाथ हमारे सिर पर है अतः हमारी विजय में कोई शंका नहीं।

१७९. साधक गण! तुम उनकी ओर एक कदम आगे बढ़ोगे तो वह तीन कदम आगे बढ़ेंगे, उसकी अतुल दया ऐसी ही है, इसलिये तुम किसी ओर न देखो, बस अचल चित्त से आगे बढ़े चलो।

हमें तो अपने घर पहुँचना है यदि मार्ग की ही किसी वस्तु पर हमारा मन लुभा गया, और उसी में रम गये, मार्ग में ही अटक गये, घर की ओर बढ़ने से रुके तो घर से अलग ही रह गये।

१८०. भगवान की कृपा पर विश्वास करके एकमात्र उन्हीं को अपना परम रक्षक, परम बन्धु, परम आश्रय मानकर उनकी शरण हो जाओ। बीत गई सो बीत गई, अब जितनी आयु शेष है उसे भगवान् को सौंप दो,

प्रतिक्षण उसका स्मरण करो, फिर वे स्वयं तुम्हें अपना लेंगे।

१८१. बार बार जन्म मरण के दुःखों से छूटना, गर्भ की अंधेरी कोठरी में कैद होने से बचना, सदा की शान्ति तथा आनन्द को प्राप्त करना ही मनुष्य का उद्देश्य है। इसलिये यह नर तन मिला है।

१८२. जो संसार की आसक्ति छोड़कर, इस विष के प्याले को पटक कर प्रभु से प्रेम करता है उस अमृत के प्याले को होंठ से लगाना चाहता है उसे संसार की मृगमरीचिका में दौड़ते, तड़पते, जलते प्राणी पागल ही कहते हैं पर जो उस अमृतसागर की प्राप्ति के लिये लालायित हो गया है, वह इस गन्दे गड्ढे जैसे संसार के सड़े कीचड़ की ओर कैसे देख सकता है।

१८३. भक्ति मार्ग में दयामय भगवान् अपने भक्त की उसी प्रकार रक्षा करते हैं जैसे स्नेहमयी माता अपने अबोध शिशु की।

१८४. जो अपने को प्रभु के श्री चरणों में छोड़ चुका, वह जब कहीं फिसलने लगता है तब दयामय भगवान् हाथ पकड़ कर उसे वहां से निकाल लेते हैं।

दूसरों की भूल पर बुरा मानने, कुढ़ने का अधिकार उसी को हो सकता है जिससे जीवन में कभी भूल न हुई हो, न होती हो।

१८५. संसार में गरीब दुःखिया को सान्त्वना देने वाला एक ईश्वर के सिवाय और कोई नहीं है। गरीब अनाथ का उस अनाथ-नाथ के अतिरिक्त और कौन हो हो सकता ?

१८६. भक्तों के साथ और कोई नहीं रहता, साथ रहते हैं भक्तों के चिर सखा, सदा संगी भगवान्, जिनका यही काम है कि शरणागत आश्रित भक्तों के साथ रहकर उनकी रक्षा करना।

१८७. भगवान् का भजन ही मानव जीवन का परम धर्म है। जिसके जीवन में भजन नहीं, वह मनुष्य नामधारी पशु है।

१८८. मनुष्य घण्टा दो घण्टा भजन ध्यान करे और सारे दिन का व्यवहार शास्त्र विरुद्ध हो, तो उससे क्या लाभ की आशा हो सकती है। जैसे रोगी औषधि खाता रहे और कुपथ्य भी करता रहे तो क्या लाभ? आवश्यकता इस बात की है कि साधक का सारा जीवन सदाचार युक्त हो। विषयों से वैराग्य हो, मोह आसक्ति का अभाव हो तभी यथार्थ लाभ हो सकता है।

१८९. भगवान् की शरणागति, भगवान् का हो जाना ही सारे दुःख क्लेशों और बन्धनों का नाश करने वाला है।

१९०. मनुष्य का एक बार पतन हो जाने पर फिर

संभलना बहुत कठिन होता है। जो भीड़ में गिर पड़ता है उसका कुचला जाना ही सहज होता है इसलिये खूब सावधान रहना चाहिये।

१६१. प्रभु नाम स्मरण रूपी अमृत के प्याले को भर-भर पीते रहो।

१६२. वृक्ष जैसे फल-भार से नीचे झुकता है वैसे ही निरभिमानता के आभूषण से जीवन को सुसज्जित करो, प्रभु की प्राप्ति के लिये असीम धैर्य रक्खो, किसी के द्वारा अनिष्ट या निन्दा किये जाने पर दुःखी न हो।

१६३. प्रभु का स्मरण, चिन्तन, भजन, ध्यान, चित्त-रूपी दर्पण को स्वच्छ कर देता है, संसार रूपी घोर दावा-नल को बुझा देता है, कल्याणरूपी कुमुद को विकसित करने वाला, तथा आनन्द के सागर को बढ़ाने वाला चन्द्रमा है। पद पद पर अमृत का आस्वादन कराने वाला तथा आत्मा को शान्ति एवं आनन्द की धारा में डुबाने वाला है।

१६४. साधक का जीवन सावधानी का है जो पद पद पर ध्यान रक्खे कि कहीं गिर न जाऊँ। मेरी इन्द्रियां जहां जा रही हैं वहाँ से क्या ला रही हैं। जरा सा भी विकार लाती हों तो सावधान हो जायें।

१६५. हमारा मानस जीवन अवनत है तो हम वास्तव में गिरे हुए हैं फिर चाहे लोगों में हम महात्मा

कहलाते हों।

१९६. जो साधक अपना भला चाहता है वह दूसरों की बुराई न देखे, अपनी बुराई को हजार आँखों से देखे, बड़ी सावधानी से देखे, कहीं छिपी न रह जाय। और जो बुराई दिखाई दे, उसे तुरन्त बड़े प्रयत्न से निकाले, जैसे सर्प को घर से तुरन्त निकाल देना चाहते हैं।

१९७. अपने को संभालने का समय है दूसरों के साथ माथा-पच्ची करने का नहीं।

१९८. किसी प्रलोभन से अथवा दूसरों को धमकाने, डराने से, रुष्ट होने के भय से जो अपने कल्याण मार्ग को छोड़ देते हैं वे भीरु होते हैं। ऐसे डरपोक पुरुषों को परमात्मा की प्राप्ति कभी नहीं होती।

१९९. जो मनुष्य वैराग्य रसिक नहीं बना, वह प्रभु राग रस का पूर्ण रसिया बन ही नहीं सकता।

२००. हृदय की कोठरी बहुत छोटी है, यदि उसमें विषयों की लालसा है, परिवार का मोह भरा हुआ है तो वहाँ भगवान् के प्रति भक्ति नहीं रह सकती।

२०१. भक्त को अदोषदर्शी होना चाहिये, उसे किसी की निन्दा कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिये।

२०२. प्रभु की कृपा में किसी कारणविशेष वश किंचित् देर भले ही हो जाय, पर उसमें अन्धेर नहीं हो सकता।

२०३. क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं, निन्दा के समान कोई पाप नहीं और मोह के समान कोई मारक वस्तु नहीं, राग के समान् कोई बन्धन नहीं और आसक्ति के समान कोई विष नहीं है।

२०४. छोड़ा हुआ भूखा शेर, अत्यन्त दोष में भरा हुआ सर्प तथा सदा कुपित रहने वाला शत्रु भी वैसा अनिष्ट नहीं कर सकता, जैसा संयमरहित मन कर डालता है। शास्त्रों का कोई अन्त नहीं, समय थोड़ा और मनुष्य अल्पबुद्धि है। अतः तू केवल यही सीख, जिससे जरा-मरण का क्षय कर सके। आत्म-साक्षात्कार के बिना यह हो नहीं सकता, कितना ही पानी विलोया जाय, उसके हाथ चिकने होने के नहीं।

२०५. वैर से वैर कभी शान्त नहीं हो सकता, यह सनातन नियम है।

२०६. तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी बंधे हुए खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं। मन के गुलाम बने हुए मनुष्य पुनः पुनः चिरकाल तक दुःख पाते हैं।

२०७. स्वांग बनाने से प्रभु नहीं मिलते, निर्मल चित्त की प्रेम भरी चाह ही उनसे मिलाती है।

२०८. लोग जानते हैं पर जानकर भी अन्धे बने हुए हैं।

२०९. इन्द्रियों का संयम नहीं, प्रभु का भजन नहीं,

ऐसा जीवन तो भोजन के साथ मक्खी निगल जाना है। ऐसा भोजन क्या कभी सुख दे सकता है।

२१०. हम स्वयं दुःखों के लिये मन में घर बना रखते हैं फिर यदि वे उसमें आकर डेरा डालें, तो इसमें उनका क्या अपराध है। जहां मरा हुआ जानवर पड़ा रहेगा, वहां कव्वे और गीध आकर उसे खायेंगे ही।

२११. आपमें विचार शक्ति होगी तो दुःख आपसे डरेगा क्योंकि वह किसी के भेजने से आपके पास नहीं आता, आप स्वयं उसे बुलाते हैं।

२१२. किसी की निन्दा करने से अपने सद्‌गुण नष्ट हो जाते हैं और नरक की प्राप्ति होती है।

२१३. भगवान् की इच्छा पर निर्भर रहना चाहिये, अपने ऊपर भार लाते ही कष्ट आ जाता है। भगवान् की इच्छा से जो घटना होती है उस घटना में कोई विशेष प्रयोजन है। भगवान् जब जिस भाव में रक्खें उसी में प्रसन्न रहना चाहिये।

२१४. शरीर से ऊपर उठो, समझो और अनुभव करो कि मैं इससे अलग चेतन तत्व हूँ, अजर-अमर हूँ, इसलिए मुझ पर मनोविकार और सुख-दुःख, हानि-लाभ क्या प्रभाव डाल सकते हैं।

२१५. हृदय की पवित्रता का अर्थ है अपने आपको सांसारिक पदार्थों की आसक्ति से मुक्त कर लेना।

२१६. दूसरे मनुष्य चाहे आप से भिन्न विचारों के हों, चाहे आपको बदनाम करें, कष्ट दें, परन्तु आपके मनरूपी सरोवर से दिव्य पवित्र प्रेमरूपी ताज़ा जल निरन्तर बहना चाहिये। आपके लिये उनके प्रति बुरी भावनाओं और विचारों का निकलना उसी प्रकार असम्भव हो जाय, जैसे शुद्ध जल का स्रोत किसी भी पीने वाले को विष नहीं दे सकता।

२१७. संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिस पर विश्वास और भरोसा किया जा सके। उन लोगों पर भगवान् की अनन्त कृपा है जो अपना आश्रय और विश्वास प्रभु पर ही रखते हैं।

२१८. जब कभी मनुष्य किसी सांसारिक वस्तु से दिल लगाता है, जब किसी सांसारिक पदार्थ में सुख ढूंढने का प्रयत्न करता है, तभी उसे धोखा होता है। इन्द्रियां उसे उल्लू बना देती हैं।

२१९. वाणी और रसनेन्द्रिय को संयत करना अति आवश्यक है।

२२०. आनन्द और शान्ति के लिए आवश्यकता है सर्वतोभावेन अपने को ईश्वर पर छोड़ देने की, न्योछावर कर देने की। अपनी सारी अहंता और ममता को उसके चरणों में रख दो। अहंता और ममता ही बन्धन है। बन्धन में क्यों पड़े हो? इस महादुःखदायी

बन्धन को अपना शत्रु समझ कर उतार कर फेंक दो।

२२१. जब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि चित्ताकाश में डेरा डाले हुए हैं तब तक न तो ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है और न भक्ति तत्व की ही उपलब्धि हो सकती है।

२२२. सरलता भक्ति मार्ग का सोपान है तथा सन्देह और कपट अवनति के चिन्ह हैं।

२२३. रोते-रोते आये, ऐसा काम करो कि हंसते-हंसते जाओ।

२२४. शरीर के लिये आहार है, आहार के लिये शरीर नहीं।

२२५. विश्वास के साथ अपने आपको उनके श्री-चरणों में डाल दो, प्रत्येक ईश्वर-इच्छा को नम्रता से स्वीकार करते हुए प्रसन्न रहो, यही शरणागति और समर्पण है।

२२६. एक को मजबूती से पकड़ लें, तो अनेकों की खुशामद नहीं करनी पड़ती।

२२७. परमार्थ का मार्ग व्यवहार से होकर ही जाता है, इसलिये व्यवहार को शास्त्रमर्यादा के अनुसार बनाओ। व्यवहार अमर्यादित हुआ तो परमार्थ का पता नहीं चलेगा।

२२८. यत्न करो कि गर्भवास में फिर न पड़ना पड़े तभी जन्म सार्थक होगा।

२२९. सावधान रहो कि कोई काम यहां ऐसा न हो जाय कि जिसके लिये चलते समय पछताना पड़े। यदि सावधानी नहीं रक्खोगे, तो नीचे गिरने से बच नहीं सकते, संसार का प्रभाव नीचे ही गिरायेगा।

२३०. मनुष्य जीवन की सफलता प्रभु प्राप्ति में है। यह तन बार-बार मिलेगा नहीं, इसलिये आगे की यात्रा के लिये अभी से प्रभु भजनरूपी धन इकट्ठा कर लो।

२३१. दूसरे की चर्चा विषवत् छोड़ दो, न स्वयं करो, न कानों से सुनो। पर-चर्चा और बाह्य दृष्टि का सदा के लिये त्याग करो। दूसरे की बात सोचने से अपना मन मलिन होता है। कमरे की दीवार पर लिख रक्खो "पर चर्चा निषेध, बाह्य-दृष्टि का त्याग।"

२३२. दूसरों के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करो जिसे तुम अपने प्रति किये जाने पर अप्रिय समझते हो। जो कुछ तुम अपने प्रति चाहते हो वैसा ही दूसरों के प्रति भी करना आवश्यक है।

२३३. भक्ति की धारा लेखनी से नहीं बह सकती, वह बुद्धि का विषय नहीं है, वह तो हृदय की गुफा में से निकल सकती है और जब वहाँ से फूट निकलेगी, तब उसके प्रवाह को कोई भी शक्ति रोक नहीं सकेगी। जैसे, गंगा के प्रबल प्रवाह को कौन रोक सकता है।

२३४. संयमहीन पुरुष को गया बीता समझिये।

इन्द्रियों को निरंकुश छोड़ देने वाले का जीवन कर्णधार-हीन नाव के समान है जो निश्चय ही पहली चट्टान से टकरा कर चूर-चूर हो जायगी।

२३५. हम होठों से असत्य तथा कड़वे वचन न निकालें, कानों से किसी की निन्दा न सुनें, आंखों से मन को विचलित करने वाला दृश्य न देखें। वाणी से सत्य बोलें, ईश्वर का नाम जपें, कानों से सदुपदेश सुनें, जो ऐसा करेगा वही कल्याण मार्ग में आगे बढ़ेगा।

२३६. भगवान् के सैनिक वीर योद्धा! कहाँ है तेरे लिये शोक, दुःख, कष्ट? क्योंकि तेरा जीवन तो एक गौरव की वस्तु है।

२३७. जब तक तुम संसार से ही सुख-सन्तोष प्राप्त करने की आशा में रहोगे, तब तक ईश्वर के प्रति सन्तोषी नहीं बन सकोगे।

२३८. जब तक तुम्हारे मन में संसार घुसा हुआ है तब तक प्रभु तुम से दूर हैं, संसार की ओर तुम्हारी दौड़ बन्द होने पर ही ईश्वर की ओर तुम्हारी प्रगति होगी, जरूर होगी।

२३९. मनुष्य बीज बोता है नरक-अग्नि के, और आशा रखता है स्वर्ग के सुख की, इससे बढ़कर मूर्खता क्या होगी।

२४०. जो ईश्वर को ही अपना सर्वस्व मानता है

यथार्थ में वही धनी है। जो सांसारिक वस्तु, परिस्थिति को ही अपनी सम्पत्ति मानता है उसको सदा के लिये दरिद्र, निर्धन समझना चाहिये।

२४१. संसार में इन्द्रियों को बांधने के लिये जितनी मजबूत सांकल की जरूरत है उतनी मजबूत सांकल की जरूरत पशुओं को बांधने के लिये नहीं।

२४२. जो सांसारिक पदार्थों में मोह न रखकर अपना सारा बोझ, भार प्रभु पर छोड़कर हलका हो जाता है, वह सहज ही संसार-सागर से पार हो जाता है।

२४३. मनुष्यों की अपेक्षा तो भेड़-बकरी ही अधिक सावधान हैं क्योंकि मालिक की आवाज सुनते ही तुरन्त उसी ओर दौड़ पड़ती हैं। खाना-पीना भी छोड़ देती हैं, परन्तु मनुष्य इतने बेपरवाह हैं कि मालिक की आवाज, शास्त्र, श्रुति आदि सुनने पर भी उसकी ओर नहीं जाते, आहार-विहार आदि में ही रचे-पचे रहते हैं यह कितने आश्चर्य की बात है।

२४४. जो तुम्हें ईश्वर से दूर रक्खे वही संसार है। इस संसार में वही सुखी है जिसने दूसरे लोगों और पदार्थों से ईश्वर को ही सर्वोपरि समझा है।

२४५. तुम जो इस शरीर के लिये रात दिन चिन्ता करते हो, इसके बदले जिस ईश्वर ने स्वयं तुम्हारी आवश्यकताओं को पूरा करने का, योग-क्षेम वहन करने का

भार ले रक्खा है उस पर श्रद्धा और निर्भरता करो तो तुम सदा के लिये निश्चिन्त हो जाओ, सदा शान्त और प्रसन्न रहो, इसमें सन्देह नहीं।

२४६. जो पुरुष साधना के शस्त्र से समस्त सांसारिक कामनाओं का मस्तक काट डालता है और जिसकी समस्त आकांक्षाएं प्रभु प्रेम में अदृश्य हो जाती हैं, और ईश्वर जैसे रखता है उसी में सन्तुष्ट, प्रसन्न रहता है उसी को सच्चा योगी, सच्चा भक्त समझें।

२४७. जो ईश्वर को प्राप्त करना चाहें उन्हें दूसरे विषय की चर्चा ही नहीं करनी चाहिये।

२४८. तुम या तो जैसे अन्दर से हो, वैसे ही बाहर से दिखाई देते रहो या जैसे बाहर से दिखाई देना चाहते हो वैसे अन्दर से बन जाओ। अर्थात् अन्दर और बाहर एक से हो जाओ।

२४९. ईश्वर की प्राप्ति में न आंखों की जरूरत है न वाणी की। उसके लिये तो बस पवित्र हृदय की ही आवश्यकता है, अतएव ऐसा प्रयत्न करो कि तुम्हारा मन उस पवित्रता को प्राप्त करने के लिये सतत जाग्रह रहे। पूरे जाग्रत मन का अर्थ यही है कि ईश्वर के अतिरिक्त किसी विषय की इच्छा मन में रहे ही नहीं, और मन परम प्रभु की स्मृति में, उनके प्रेम में डूबा रहे।

२५०. अपने दोषों को न देखने, न दूर करने का

ही नाम धर्मान्धता है। कहनी के अनुसार रहनी न हो, इसी का नाम ठगी है।

२५१. यदि तुम्हें सच्चा सुख प्राप्त करना है तो तुम अपना भार अपने ऊपर से उतार कर प्रभु के ऊपर डाल दो और निश्चिन्त होकर प्रभु का ही भजन करने वाले बनो।

२५२. ऐसा काम करो जिससे प्रभु के प्रीतिपात्र बनो, संसार का प्रीतिपात्र बन जाना तो अपने को अधोगति में ही जा गिराना है।

२५३. जो मनुष्य सच्चे हृदय से साधना के लिये तय्यार रहता है, उसकी इच्छा करता है उसको प्रभु अवश्य मार्ग दिखाते हैं।

२५४. कष्ट आ पड़ने पर जो मनुष्य दुःखी होता है वह शास्त्र की दृष्टि से ईश्वर का अविश्वासी समझा जाता है।

२५५. सन्तोष कड़वा होता है परन्तु उसका फल मीठा होता है।

२५६. मीठी वाणी और नम्रता में वह तासीर होती है जिससे कि हाथी को भी केवल इशारे से ही जहाँ चाहो ले जा सकते हो।

२५७. मेरी जो इच्छा है वही हो, इस प्रकार की आकांक्षा न करके यदि मनुष्य ऐसा विचार करके चाहे

जैसी घटना हो, मैं उसे प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करूंगा, तो मनुष्य सुखी रह सकता है।

२५८. किसी दूसरे मनुष्य से तुम्हारा अनिष्ट होगा, ऐसा विचार अपने मन में कभी न करो।

२५९. सांसारिक सुख का यह हाल है कि वह मृदु हंसी हंसते-हंसते आता है किन्तु जाते समय तीव्र डंक से डसता और मार डालता है।

२६०. बुद्धिमान् मनुष्य करते अधिक हैं और कहते कम हैं।

२६१. जो मनुष्य कठिनाइयों से हताश हो जाता है, और उनके सामने सर झुका देता है उससे कुछ भी नहीं हो सकता। परन्तु जो मनुष्य विजय प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर लेता है वह कभी असफल नहीं हो सकता।

२६२. जितना हम सोचते हैं कि अमुक पुरुष में यह-यह बुराई है वह लौटकर हमें ही बेधती है अर्थात् बुराई अन्दर प्रवेश करती है।

२६३. मरुमरीचिका की तप्त रेत तो रात्रि में शीतल हो जाती है किन्तु भोगों की ज्वाला शीतल होना जानती ही नहीं।

२६४. मरु-भूमि में जल की भावना करके दौड़-दौड़ कर भटकते मृग मूर्च्छित होते हैं, तड़प-तड़प कर मरते हैं किन्तु वे एक बार ही मरते हैं, परन्तु संसार के भोगों में

आसक्त मानव, जीवन भर दुःख, अशांति निराशा के बाद मृत्यु का ग्रास होता है, हजार हजार बार मृत्यु का ग्रास बनता है। यों अपने किये का परिणाम प्राणी को बाध्य होकर भोगना ही पड़ता है।

२६५. मनुष्य का घर पर स्नेह होता है, परन्तु धन जेवर वाली तिजोरी पर उससे अधिक स्नेह होता है। इसी प्रकार भगवान् को सारा संसार प्यारा है पर उसमें भी जो उसके प्रेमी भक्त हैं वे उनको अधिक प्यारे हैं।

२६६. संसार तो धर्मशाला है। वास्तविक घर तो प्रभु का धाम ही है।

२६७. प्रभु भजन का पहला फल है अपनी कमी का ज्ञान होना, दूसरा उस कमी के कारण दुःख होना (उस कमी को मनुष्य तभी दूर करने का प्रयत्न करेगा जब कि उसे कमी के कारण दुःख होगा।)

२६८. यदि आप सच्चा स्वराज्य, सच्ची शांति चाहते हैं, इसे अपने जीवन का पुण्य व्रत मानते हैं तो सर्वप्रथम अपने भीतरी शत्रुओं से युद्ध के लिये प्रस्तुत होइये। सबसे पहले वह उपाय खोजिये जिसके द्वारा हृदय में छिपी वासनाओं पर विजय प्राप्त हो।

२६९. हम वास्तव में किसी दूसरे के दास नहीं हैं, हम रात दिन गुलाम हैं अपनी वासना के। हमने चाह चाहकर वासनाओं की बेड़ी से अपने पैरों को जकड़

रक्खा है। इस बेड़ी से अपने को मुक्त किये बिना हमारी सच्ची स्वाधीनता की आशा विडम्बना मात्र है, स्वराज्य प्राप्ति की व्यर्थ आशा, प्रसन्नता मन मोदक खाने के समान है।

२७०. जितना सत्संग करे, उससे अधिक मनन करे। थोड़ा खाकर अधिक पचाने से पाचन ठीक होता है, शक्ति बढ़ती है। और जैसे नींव के बिना महल का खड़ा रहना असम्भव है, वैसे ही मनन के बिना सत्संग का प्रभाव भी टिकना असम्भव है। जैसे भोजन के एक-एक ग्रास से भूख मिटती है, तृप्ति होती है और शरीर का बल बढ़ता है, वैसे ही सत्संग की जुगाली करने से विषय की भूख मिटती है, रस की वृद्धि होती है और प्रेम का एक-एक अंग पुष्ट होता है अर्थात् प्रभु में प्रेम दिन प्रति-दिन बढ़ता है।

२७१. मनुष्य जीवन की सार्थकता और कृतकृत्यता आध्यात्मिक सुख शान्ति में है। इसके लिये सदा साव-धान, जागरूक रहना चाहिये। चित्त को पवित्र रखना चाहिये। पर-दोष दर्शन और निन्दा से बचना चाहिये, और अन्तर्मुख रहना चाहिये, तभी मनुष्य अपने लक्ष्य की पूर्ति कर सकता है। नहीं तो मनुष्य अमृत के प्राप्त हुए घट को अपने हाथ से गिराकर प्रमाद का परिचय देगा। अतः आध्यात्मिक सुख-शांति के लिये सदैव

प्रयत्न करना चाहिये।

२७२. प्रवाह में बहना मुर्दों का काम है, जिन्दा दिल प्रवाह के प्रबल बहाव से अपने को सुरक्षित रखते हुये सदैव शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिये अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहते हैं। हम सभी को इस प्राप्त हुए सुअवसर का सदुपयोग करना चाहिये। जीवन तो वही है जो दुःखों का समूल नाश करके निःश्रेयस रूप परमपद की प्राप्ति के लिये उपयोगी हो।

२७३. ऐसा सुअवसर प्राप्त होने पर जो प्रभु-प्राप्ति के लिये प्रयत्न नहीं करते उनको तो मूर्खों का सरदार ही समझना चाहिये।

२७४. भगवान् माता के समान एक-एक प्राणी को जन्म देते हैं। पिता के समान पोषण करते हैं, और कुशल वैद्य के समान उसकी चिकित्सा करते हैं, यदि प्राणी इस पर विश्वास करले तो वह भगवान् के भरोसे अपने लक्ष्य तक सुगमता से पहुँच सकता है।

२७५. जो मनुष्य जन्म भर दिन-रात शरीर के पालन पोषण में रत रहता है, ईश्वर की उपासना, उसका स्मरण चिन्तन नहीं करता, उसे दो पैर वाला बैल ही जानो।

२७६. मित आहारी होना चाहिये, पेट अमीर के स्थान में फकीर ही अच्छा है। जितना हम इसे अधिक

भरेंगे उतना ही अधिक यह हमें रोगी और अशान्त रक्खेगा। इन्द्रियानुरागी पुरुष अशांति संघर्ष तथा शोक का केन्द्र होता है।

२७७. जो मूढ अपने को मूर्ख जानता है वह पंडित हो सकता है, जो मूर्ख होकर अपने को ज्ञानी मानता है उसका सुधार होना असम्भव है।

२७८. जैसे कड़छी सदैव शाक-सब्जी में रहने पर भी उनके स्वाद को नहीं जानती, वैसे ही मूर्ख लोग जीवन भर सन्तों के पास रहकर, उनके उपदेश सुनकर भी मर्म को नहीं जान पाते।

२७९. एक महारथी जिसने संग्राम में सहस्रों लाखों शत्रुओं को जीता है, और एक मुमुक्षु जिसने केवल अपने मन को जीता है उन दोनों में मन का विजयी ही सूरमा है।

२८०. ज्ञानी लोग लोहे से बनी हथकड़ी आदि बंधन को दृढ़ बन्धन नहीं कहते, परन्तु जो धन, पुत्र आदि में मोह-रूपी बन्धन है, उसी को दृढ़ बन्धन कहते हैं।

२८१ आनन्द को अन्दर ही खोजना चाहिये। सुख-दुःख देने वाली बाह्य वस्तुओं से आनन्द की आशा नहीं करनी चाहिये।

२८२, विषयों के साथ खेल खेलना और अछूते रहना यह अनहोनी बात है।

२८३. जब कोई भक्ति मार्ग में एक बार अपने को ईश्वर को सौंप देता है, तब स्वयं भगवान् ही उसकी निष्ठा को बढ़ाते चले जाते हैं और अन्त में अपने यथार्थ स्वरूप का पूर्ण ज्ञान करा देते हैं।

२८४. सच्चा नर वही है जो काम, क्रोध आदि को जीतकर भोगों से वैराग्यवान् और उपरत होकर सच्चिदानन्द घन परमात्मा को प्राप्त कर ले। जो मनुष्य आसक्तिवश विषयों के प्रलोभन में फंस कर परमात्मा को भूल जाता है वह नर नहीं है, वह तो पशु से भी गया बीता, बिना सींग पूंछ का निकम्मा और जगत् को दुःख देने वाला जन्तु विशेष है।

२८५. प्रभु की शरण ग्रहण करने वाले भक्त पर परम दयालु, परम सुहृद्, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की दया का स्रोत बहने लगता है जो उसके समस्त दुःखों और बन्धनों को सदा के लिये बहा ले जाता है।

२८६. मनुष्य आज समझता है कि उसने बहुत उन्नति की है परन्तु, भोले मानव! तनिक सोच तो सही, क्या यही तेरा वास्तविक अधिकार है, क्या भर पेट भोग भोगने के लिये ही प्रभु ने तुझे यह शरीर प्रदान किया है। भोगों से क्या कभी किसी का पेट भरा है। यह तो बहुत बड़ी विडम्बना है, भरने से पहले ही पेट फट जाता है। भोग रोग में बदल जाता है और भोग वासना

अतृप्त ही रह जाती है। सारे संसार की सम्पत्ति मिल जाने पर भी वह एक मनुष्य की हो तृष्णा शान्त करने में समर्थ नहीं है। इसलिए थोड़ा ठहर और सोच कि तेरा वास्तविक अधिकार क्या है ? प्यारे मानव ! इसमें सन्देह नहीं कि तू स्वभाव से ही पूर्णता की मांग लेकर अवतीर्ण हुआ है। निरतिशय आनन्द ही तेरी एकमात्र पुकार है। सब प्रकार की पूर्णता या अमृतत्व ही तेरा एकमात्र अधिकार है, अपने इस जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त किये बिना तुझे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। परन्तु तू तो न जाने क्या-क्या उपाय शांति की प्राप्ति के लिए करता रहता है। आकाश पाताल एक कर रहा है। शांति तो तेरी निजि सम्पत्ति है। तू ने अशांति के कारणों का आश्रय लेकर उलटा अपने को अशान्त कर लिया है। यदि तुझे अपने वास्तविक साध्य को पाना है, परमात्मा को प्राप्त करना है, तो सब बखेड़ों को छोड़कर उस परमात्मा की ही शरण में चला जा। वे स्वयं ही अपना परिचय कराके तुझे अपना लेंगे।

२८७. इस शरीर से तादात्म्य करके ही तूने अपनी दुर्दशा की है। इसी कारण तू अपने वास्तविक अलौकिक अधिकार को भूलकर उन वस्तुओं की वासना में फंसा है, जो कभी किसी प्रकार तेरी नहीं हो सकतीं। अतः यदि तू अपने को अपने स्वयंसिद्ध परमपद पर अभि-

विकत देखना चाहता है, तो तुझे इस देह की आसक्ति से मुक्त होना होगा।

२८८. इस देह के रहते हुये क्या कभी यह सम्भव है कि तेरे जीवन में सर्वदा अनुकूलता ही रहे, प्रतिकूलता का दर्शन ही न हो, अतः अनुकूलता के प्रलोभन और प्रतिकूलता के भय को छोड़कर तू प्रभु के संकेत का अनुसरण कर। वही जीवन पथ में आने वाली सब प्रकार की घाटियों से पार करके तुझे तेरे लक्ष्य पर पहुँचा देंगे।

२८९. विवेक की प्राप्ति के लिये पहली शर्त यह है कि तुझे दूसरों के नहीं, अपने आचरण पर दृष्टि रखनी होगी, जिसकी दृष्टि पर-दोष-दर्शन में लगी रहती है वह कभी विवेक को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः दूसरों के दोष न देखकर अपने ही आचरण पर दृष्टि रख। इसी से तेरी दृष्टि निर्दोष होगी और तू विवेक प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

२९०. भोले मानव ! पद, प्रतिष्ठा और धन-वैभव आदि को, जिनके पीछे तू भटक रहा है उनका महत्व तो तेरी आसक्ति का ही चमत्कार है। तूने मोहवश अपना मूल्य घटा कर ही इनकी महिमा बढ़ाई है। प्यारे ! वे सब तेरी ही छाया हैं। जो व्यक्ति सूर्य से विमुख होकर अपनी छाया को पकड़ने के लिए दौड़ता है, वह कभी उसे पकड़ने नहीं पाता, किन्तु यदि छाया से मुख मोड़

कर सूर्य की ओर बढ़ने लगे तो छाया उसके पीछे लग जाती है, यही दशा इस माया के विलास की है। जो इसे पकड़ना चाहता है उससे यह दूर भागती है, और जो इसकी ओर से मुंह मोड़कर मायापति की ओर बढ़ने लगता है उसके पीछे यह स्वयं लग जाती है। परन्तु वह इसकी ओर कभी आँख उठाकर देखता भी नहीं। इसलिये इनकी मोह-ममता छोड़कर तू अपने निज लक्ष्य की ओर बढ़। अपने इस वास्तविक लक्ष्य को पाने में तुझे किसी प्रकार की पराधीनता भी नहीं है। यह तेरी निजि सम्पत्ति है। तेरे पास ही है, इसे प्राप्त करने में तू सर्वथा स्वतन्त्र है और इसे पाने के लिये ही तुझे यह मनुष्य शरीर मिला है। इसे पा लेने पर तुझे कुछ पाना शेष नहीं रह जायेगा। फिर बता, तू अपनी इस अक्षय निधि को छोड़कर कहां भटक रहा है।

२६१. मनुष्य का भविष्य वास्तव में इतना महान् है कि जिसकी कोई तुलना नहीं है फिर भी कितने आश्चर्य की बात है कि इसके जीवन का पर्यवसान ऐसा शोकजनक हो। जो मानव परमानन्द को प्राप्त करने का अधिकारी है वही राग-द्वेष उपजने वाले वैषयिक सुख के दल-दल में इस प्रकार लोट पोत करता रहे।

२६२. असीम अनन्त साम्राज्य का अधिकारी मनुष्य आज एक भिखमंगे की तरह सांसारिक सुखों के

दुर्गन्धयुक्त ढेर में से कूड़ा बटोर रहा है। क्या मानव जाति पीछे फिर कर देखेगी, क्या मानव के नेत्रों पर से प्रमाद का यह पर्दा हटेगा, और वह शाश्वत आनन्द के स्रोत की कुछ झलक पायेगा।

२६३. परम तत्व के साक्षात्कार के लिये, परमानन्द की प्राप्ति के लिए, दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति के लिए, जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिये तथा जन्म-मरण से सर्वथा एवं सदा के लिए छुटकारा पाने के लिये जिन अंशों की अपेक्षा होती है वे सब मनुष्य में विद्यमान हैं। ऐसा सुअवसर प्राप्त करके भी यदि कोई चरम दुःख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति के लिये प्रयत्न न करे, तो वह शास्त्र की दृष्टि में आत्म-हत्यारा है।

२६४. मनुष्य होकर भी जो मनुष्य के उद्देश्य को नहीं समझता और न उसके अनुसार कार्य करता है वह मनुष्य नहीं पशु है।

२६५. मानव! तुम दुःखी रहने के लिए नहीं जन्मे, अखिल आनन्द का भण्डार तुम्हारे अन्दर भरा हुआ है। उसको प्राप्त करने का एकमात्र साधन यह मनुष्यदेह भी तुम्हें प्राप्त है इस स्वर्ण अवसर से लाभ उठाओ।

२६६. दुःख और सुख दोनों एक ही जीवन-पट के अन्दर ताना बाना बुन कर ओत-प्रोत हो रहे हैं। यों समझ कर दोनों अवस्थाओं में मन को अडोल, शान्त

रखना चाहिये।

२९७. जैसे मुझसे अज्ञानवश कई प्रकार के अपराध हो जाते हैं वैसे ही दूसरों से भी हो जाते हैं, यह जान-कर दूसरों द्वारा जब हमारे प्रति कोई अपराध हो जावे, तब हमें क्षमाशील होना चाहिये। आपे से बाहर होकर खटपटाना नहीं चाहिये। अपने जीवन में संयम और मर्यादा को अधिक से अधिक मात्रा में प्रतिष्ठित करना चाहिये। अपनी आवश्यकताओं का यथासम्भव संकोच करना चाहिये।

२९८. अपने कार्य अपने हाथ से करने में आत्म-गौरव समझना चाहिये।

२९९. बीती हुई प्रतिकूल बातों का स्मरण करके शोक करना छोड़ देना चाहिये। आगे आने वाली अनु-कूल बातों की पहले से ही आकांक्षा करना अर्थात् मन के लड्डू बनाना छोड़ देना चाहिये।

३००. कोई निन्दा करे अथवा कोई स्तुति करे, इसकी चिन्ता कदापि न करते हुए अपने अन्दर पुष्टिमात्र का ध्यान रखते हुए जीवनयात्रा करनी चाहिये।

३०१. मन के विपरीत किसी घटना के प्राप्त होने पर उसे ईश्वर का विधान मान कर सन्तुष्ट रहना चाहिये।

३०२. बहुत कम बोलना चाहिये।

कहे एक जब सुन ले दो।
ईश्वर ने जबान एक दी और कान दो॥

३०३. संसार सदाचार, सेवा, संयम और दया चाहता है, पर भगवान् हमसे भक्ति तथा प्रेम चाहते हैं। अतः हमें ऐसा जीवन बनाना चाहिये जो जगत् तथा जगत्-पति दोनों के लिये प्रिय हो।

३०४. मानव जीवन को प्रभु की ओर न लगाकर भोगों की ओर झुकाना अमृत को फेंक कर विषपान करना है।

३०५. प्रभु भक्ति को छोड़कर अन्य-अन्य उपायों द्वारा जो सुख पाना चाहते हैं वे महामूर्ख और बुद्धि के शत्रु हैं।

३०६. मूर्खता के लक्षण—

(१) अपने को ज्ञानी समझना और दूसरों के छिद्र ढूंढना।
(२) कथनी और करनी में भेद होना।
(३) अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करना।
(४) जो धर्मात्मा पुरुष के साथ अति निकट रहता है पर उपदेश किये जाने पर बुरा मानता है।
(५) जो विना पूछे बोलता है, ये सब मूर्खता के लक्षण हैं।

३०७. किसी के बन जाओ, अर्थात् किसी को अपना रक्षक स्वामी बना लो, पर स्वामी समर्थ को बनाओ, सबसे समर्थ हैं भगवान्, बस उनको ही स्वामी

बना लो, उनके बन जाओ। भगवान् के बन जाने पर जगत् में कोई उसे सताने, दुःख देने में समर्थ नहीं होता चिन्ता, भय और शोक उसके पास नहीं आते।

३०८. जिनको जितनी ही चिन्ता, भय और शोक होता है समझ लो कि वह उतना ही भगवान् का नहीं हुआ। जिसके सिर पर सारे ब्रह्मांडों के स्वमी सर्वशक्तिमान् हों, उसे क्या चिन्ता, भय और शोक हो सकता है?

३०९. जब-जब मन में अशान्ति हो, तब-तब समझना चाहिये कि हम भगवान् को भूल गये हैं।

३१०. तुमने सारे शास्त्र पढ़ लिये, सारे संसार की जानकारी प्राप्त कर ली, पर क्या तुमने यह जान लिया कि तुम कौन हो? इसके जाने बिना सारा जानना व्यर्थ है। तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ गया। अब भी चेतो, अपने को जानो, समझो कि तुम कौन हो?

३११. ऐसा अभ्यास करो कि चित्त में संकल्प न उठे और वह शान्त बना बैठा रहे।

३१२. तुम किस लिये चिन्ता, भय और हाय-हाय कर रहे हो, परमेश्वर पर विश्वास करो और चित्त को सदैव शान्त रक्खो, नित्य प्रसन्न रहो। एक ही दृष्टि को रक्खो कि तुम्हारा चित्त शान्त और प्रसन्न रहे।

३१३. दूसरे जो कुछ करें, उससे अपने चित्त को क्षुब्ध न होने दो। जिसका चित्त दूसरों से क्षोभ पाता

है वह हारा हुआ चित्त है।

३१४. खाये बिना भूख नहीं मिटती, उसी प्रकार किये बिना कुछ होता नहीं, तुमको ही करना पड़ेगा। मुक्ति किसी के आशीर्वाद से नहीं मिलती, यह तो अपने पुरुषार्थ से ही मिलती है। दूसरे तो मार्ग बताते हैं, मार्ग पर स्वयं चलकर लक्ष्य स्थान तक पहुँचना पड़ता है। चले बिना राह नहीं कटती। मन साधना करने से ही शान्त होता है इसलिये प्रयत्न करते रहो।

३१५. संसार की छोटी-छोटी वस्तुओं में लुभा जाने वाला मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति का अधिकारी नहीं हो सकता।

३१६. हमें सबसे पहले यह बात देखनी चाहिये कि हम अपने बारे में कितना सोचते हैं, और दूसरों के बारे में कितना। दूसरे के बारे में कुछ विचार करना भी दोष है, परन्तु दूसरों का दोष देखना तो महान् दोष है।

३१७. हम महात्माओं का संग करते हैं, शास्त्र पढ़ते सुनते हैं, परन्तु हमारी आंख खुलती ही नहीं। सारे शास्त्र पढ़ लिये, परन्तु भीतर का शास्त्र पढ़ा ही नहीं। क्या हम केवल बिना मन की कुछ क्रियाओं के प्रभु को पाना चाहते हैं? यह केवल भ्रम है। मन घूमा करे इधर उधर विषयों में, बुद्धि लोभ-मोह में फंसी रहे, और भगवान् हमें मिल जाएं, यह मनोरंजन की बात है,

तुम्हें डांट-डपट कर, समझा बुझाकर मन को अन्तर्मुख करना होगा।

३१८. सबसे पहले आवश्यकता है विश्वास की, शास्त्रों में और भगवान् में विश्वास होना चाहिये, श्रद्धा होनी चाहिये। विश्वास के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

३१९. भगवान् को भूलकर और कहीं दृष्टि का जाना ही दोष का मूल कारण है। हम जितना अधिक परमात्मा से दूर रहते हैं उतने ही अधिक दोषी हैं। जब हम अन्तर्मुख होते हैं भगवान् की ओर बढ़ते हैं, वह गुण है।

३२०. जब तक हमारे मन में सांसारिक वस्तुओं का राग है, तब तक हमारा मन पूर्ण रूप से भगवान् के ध्यान में तल्लीन नहीं हो सकता।

३२१. देहाभिमानी मनुष्य ही बिखरे हुए दुःख को चुम्बक के समान अपनी ओर खींच लेता है। यह अपने लिये एक जेलखाना बना लेता है और वही इतना ठोस बन्धन हो जाता है कि मनुष्य घुल घुल कर मरने लगता है। यदि मनुष्य विचार पूर्वक देखे तो उसके जीवन के दुःख देहाभिमान के आधार पर ही टिके हुए हैं। उनकी निवृत्ति का उपाय यही है कि यह देहाभिमान का खम्बा उखाड़ फेंका जाय।

३२२. अपना दुःख अपने मिटाने से ही मिटेगा, इसे कोई दूसरा नहीं मिटा सकता। क्योंकि यह दुःख शरीर के बाहर अथवा ऊपर नहीं होता, भीतर होता है। वहां केवल विचार का रसायन ही अपना प्रभाव डाल सकता है।

३२३. दुःखों की निवृत्ति का उपाय है किसी भी परिस्थिति में "मैं दुःखी हूँ" ऐसा अभिमान धारण न करना। दुःख की स्वीकृति ही उसे सत्ता देती है, साहस के साथ दुःख को अस्वीकार कर देना चाहिये। वास्तव में अपने स्वरूप में दुःख का लेश भी नहीं है। आत्मा को दुःख की छाया भी नहीं छू सकती। इसलिये किसी को भी दुःख के सामने हार नहीं माननी चाहिये। पूरे साहस के साथ ईश्वर पर भरोसा रखकर, शेर के समान दुःखों के सिर पर पैर रखकर दहाड़ते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होना चाहिये।

३२४. किसी सन्त के पास एक सेठ आया करते थे। वे प्रायः यह रोना रोया करते थे कि हमारे पास धन की कमी है, कुछ तंगी है। महाराज! ऐसी कृपा करो कि आमदनी कुछ बढ़ जावे। सन्त जी ने एक दिन उनसे कहा, एक दृष्टान्त सुनो। एक भिखारी जाड़े के दिनों में रात्रि के समय छोटा-सा कम्बल लपेटे खुले मैदान में पड़ा था। वह दुःख के मारे हाय-हाय कर रहा था, उधर

से एक महात्मा आ निकले। उन्होंने पूछा क्यों भाई! तुम्हें क्या दुःख है? भिखारी ने कहा, बाबा मेरा कंबल बहुत छोटा है सिर ढकता हूँ तो पांव खुल जाते हैं और पांव ढकता हूँ तो सिर खुल जाता है जाड़े के मारे ठिठर रहा हूँ। महात्मा ने कहा, भले मानस! इस संसार में तुमसे भी अधिक गरीब रहते हैं जिनके पास ओढ़ने के लिये छोटा कम्बल तो क्या, जीर्ण-शीर्ण फटा पुराना सूती कपड़ा भी नहीं है, सोच तो सही उनका समय कैसे बीतता है। अरे नासमझ! कम्बल तो बढ़ नहीं सकता, हां अपना शरीर सिकोड़ कर लेटने से इसी कम्बल से सारा शरीर ढक तो सकता है। कम्बल बड़ा तो होने से रहा, सन्तोष से काम ले। उस भिखारी ने महात्मा की बात पर ध्यान दिया और शान्त हो गया और जाड़े से बच गया। श्री सन्त जी ने उस सेठ से कहा, तुम्हारे पास कई मोटरें और घोड़ा गाड़ियां हैं, अनावश्यक बहुत से नौकर हैं। तुम अपना खर्च घटा क्यों नहीं लेते। खर्च कम करते ही समझो आमदनी बढ़ गई। बाहर की चमक दमक और झूठी शान वा शौकत के वहम में पड़ कर क्यों मन ही मन घुल-घुलकर अपनी अन्तरात्मा को दुःखी कर रहे हो। इस समय भी तुम्हारे पास लाखों की सम्पत्ति और हजारों की आमदनी है, दुःखी होने का तो कोई कारण नहीं है। आजकल लोगों की ऐसी ही

प्रवृत्ति हो रही है, खर्च बढ़ा रहे हैं और आमदनी के लिये हाय हाय कर रहे हैं।

३२५. वर्तमान युग में स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर में अधिक रोग देखने में आते हैं। इसका कारण है लोग बाहरी शरीर को जैसा भोजन वस्त्र, तेल फुलेल द्वारा सजाने-संवारने में लगे रहते हैं, वैसा ध्यान भीतरी शरीर, मन का नहीं करते। बेचारा भूखा नंगा, रूखा सूखा, बिलखता पागल सा इधर-उधर भटका करता है, वह अल्प धृति, अल्प शक्ति और अल्प प्राण हो गया है। थोड़ी-थोड़ी बात से घबरा जाता है। शरीर में जरा कहीं चोट लग गई, बस दुःखी हो गया, शरीर में फुन्सी हुई और विषैली हो जाने के वहम ने दुःख को सौ गुणा बढ़ा दिया। इसके लिए शारीरिक नहीं मानसिक चिकित्सा जरूरी है। यदि हमारा मन अपने शुद्ध स्वरूप में रहे अथवा भगवान् में लगा रहे, अपनी स्वरूप निष्ठा और प्रभु-विश्वास में दृढ़ रहे तो संसार के दुःखों की गन्ध भी न आवे।

३२६. धधकती हुई आग को शीतल मणि समझ कर उसे गोद में उठा लेना, जैसे सुख का साधन नहीं हो सकता, तथा विष को अमृत समझकर पान करना, जैसे अमरपने का कारण नहीं है, ठीक वैसे ही विनाशी वस्तुओं को सुखदायी समझकर अपनाने से सुख की

प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि उनमें सुख है ही नहीं। वास्तविक सुख है परमात्मा में, उसको प्राप्त करने में ही जीवन की सफलता है।

३२७. जीव का धर्म है साधना और प्रभु का धर्म है कृपा।

३२८. प्रभु की कृपा सब प्राणियों पर है। परन्तु प्रभु कृपा का नाम लेकर हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना आत्म-वञ्चना है, अपने को ठगाना है। परिवार के लिये, शरीर के लिये, मनोरंजन के लिए प्रयत्न हो। और साधना की चर्चा चलने पर अपनी अकर्मण्यता और आलस्य के समर्थन में प्रभु कृपा का नाम लेकर, उसके नाम पर सन्तोष कर लें, यह एक बहुत बड़ा अपराध है।

३२९. हृदय के अन्तर्देश में परमात्मा और उसके बाहर के देश में प्रपंच है। दोनों के मध्य में स्थित हृदय जब स्थूल प्रपंच का चिन्तन करता है तब जड़ सा हो जाता है, और दुःखों से घिरा रहता है। और जब अन्तः स्थित आनन्दस्वरूप परमात्मा का चिन्तन करता है, तब आनन्दित हो जाता है। हृदय को प्रपंच की दल-दल से निकाल कर प्रभु की ओर झुकाना ही साधना है।

३३०. हम साधना में लग रहे हैं। साधना करते करते हम उन्हें नहीं देखते, परन्तु वे तो हमें देख रहे हैं। वे हमें, हमारी प्रत्येक चेष्टा को, भाव को देख रहे हैं और

उनके मिलने के लिए ही मैं साधना कर रहा हूँ। इतना पक्का भाव रखकर जैसे वे रक्खें, रहो। वे अवश्य तुम्हें अपनी पहचान करायेंगे, अपना दर्शन देंगे।

३३१. हे जिज्ञासुओ! जो समय व्यतीत हो गया, उसके लिये शोक मत कीजिये, जो भी शेष है वह भी इतना महत्वपूर्ण है, कि उचित रीति से काम में लाये जाने पर आप अपने जीवन को सफल कर सकते हैं तथा हँसते-हँसते संसार से विदा हो सकते हैं। आज से ही संभल जाइये, तथा अध्यात्म-पथ को परम श्रद्धापूर्वक ग्रहण कीजिये। ईश्वर स्वयं ही साधकों को अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने के लिये प्रयत्नशील हैं। वे आपकी उलझनों, गुत्थियों को स्वयं खोलते हुए ले चलेंगे। प्रारम्भ में जो छोटी-मोटी कठिनाइयां आवें, उनसे कदापि भयभीत न होवें, यही परीक्षा का समय है।

३३२. शान्त और आनन्दमय जीवन व्यतीत करने का आधार ईश्वर की असीम शक्ति में विश्वास ही है। संसार का समस्त हाहकार इसी केन्द्र बिन्दु से पृथक् हो जाने का कारण मचा हुआ है। ईश्वर में पूर्ण विश्वास करने से ही मनुष्य हार्दिक शान्ति और सच्चे सुख का अनुभव करता है। जीवन की सच्ची समृद्धि प्राप्त करने और जीवन-मरण के दुःखों से छूटने के निमित्त हमें आस्तिक बनकर अपने जीवन का निर्माण करना चाहिये।

३३३. प्रतिदिन मनुष्य की शक्ति का कुछ न कुछ संचित कोष कम हो रहा है। जीवन राशि लुटी जा रही है। आश्चर्य की बात है कि मनुष्य भविष्य को सुखमय बनाने के लिये कुछ साधना नहीं करते। प्रिय जिज्ञासुओ! मोह की निद्रा से उठ जाइये। देखिये आपकी स्थिति कैसी है इस स्थिति को प्रकाशमय बनाइये, निरन्तर बढ़ते जाइये।

३३४. दिन रात्रि के चौबीस घण्टों में आप कितना समय आत्म-चिन्तन, प्रभु भजन में व्यतीत करते हैं इस पर विचार कीजिये। प्रातः से सायंकाल तक खाना-पीना, सोना, सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करना आदि कामों से बचा, कर कितना समय आपने परमार्थ साधन के लिये नियत किया है। धन, वैभव, विद्या, बुद्धि, श्री के मद में दूसरों को कितना तुच्छ मानते हैं। किन्तु पानी के बुलबुले के समान सारहीन जीवन की स्थिति पर तनिक भी विचार नहीं करते। यह कितने आश्चर्य की बात है।

३३५. आप कभी भी ऐसा न मान बैठिये कि मुझ में योग्यता नहीं है, मैं निर्बल हूँ। आपको अपने आपको हीन कहने का अधिकार नहीं है। ऐसा कहकर आप अपने आत्मस्वरूप का अपमान करते हैं। आपका कल्याण इसी में है कि आप अपने को ईश्वर का पुत्र ही मानते रहें और निरन्तर इस दिव्य भावना को अधिकाधिक जाग्रत करते रहें।

३३६. जरा-जरा सी क्षुद्र बातों से चिढ़ने, नाक-भौं सिकोड़ने, अपने आपको कोसने, उद्विग्न होने, व्याकुलता तथा परेशानी का अनुभव करने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। तुम साक्षात् ईश्वर के पुत्र हो, अपने आपको तुच्छ मानकर स्वयं ही अपना अहित कर रहे हो। यदि अपने को तुच्छ, अशक्त समझोगे तो शनैः-शनैः तुम्हारी शक्ति का ह्रास होगा! सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु के पुत्र होते हुए अनन्त शक्तियों के स्वामी बनकर भी तुम निस्तेज और आसक्त बने रहोगे और अपने आपको हीन, नीच, पराधीन मानकर आत्मा का हनन कर दोगे, यह तुम्हारे निर्माण कर्त्ता ईश्वर को इष्ट न था।

३३७. अशान्ति का प्रारम्भ वासना की प्रदीप्ति से होता है, जिस अवस्था में वासना का ताण्डव नहीं, वहीं शान्ति और प्रसन्नता है। वासना मनुष्य को संसार में जकड़ने वाली जंजीर है। और यह एक ऐसा पत्थर है जिसे गले में बंधे हुए मनुष्य इधर से उधर भाराक्रान्त हो मारा-मारा फिरता है। वासना वह नशा है जो मनुष्य को पागल कर देता है और मन की शान्ति को भंग करता है। वासना विष बेल है। एक बार जड़ पकड़ने या ढील देने से यह बुरी तरह फैलती है "आज आनन्द ले लें, कल से इन्द्रिय निग्रह करेंगे" ऐसा सोचने वाले मनुष्य अपने निश्चय को ढीला कर देते हैं, और आजन्म

इन्द्रियों के गुलाम बने रहते हैं और शान्ति को खो बैठते हैं।

३३८. जिस प्रकार आम को खाये बिना, सामने रक्खे रहने से उसका स्वाद मालूम नहीं होता, हथियार को खरीद कर रख लेने से उसका चमत्कार प्रतीत नहीं होता, दवाई का सेवन किये बिना उसका लाभ दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार सत्संग और ज्ञान का व्यवहार में लाये बिना कुछ भी लाभ नहीं है। पठन-पाठन का ज्ञान चाहे वह कितना भी अधिक क्यों न हो, अन्ततः पुस्तक में ही रह जायेगा, छटाँक भर क्रियात्मक ज्ञान मन भर पंडिताई से बहुत श्रेष्ठ है।

३३९. इन्द्रिय सुख की अपेक्षा इन्द्रिय निरोध में अधिक सुख है। हम अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रक्खेंगे और उन्हें स्वतन्त्र इधर-उधर दौड़ने देंगे, तो मानो जान-बूझकर दुःख सागर में अपने को डालेंगे। इन्द्रियों के विषयों में सुख नहीं है। अमृतत्व का यह सागर आपके भीतर है। आनन्द का भण्डार आपके अन्दर है। उसमें विचारिये, मन का चाहा आनन्द मिलेगा।

३४०. संसार के नाश्वर पदार्थों के मोह जाल में अपने उच्च आध्यात्मिक जीवन को विस्मृत कर देना भारी मूर्खता है। हमें सच्ची शान्ति प्राप्त करना है तो छोटी-छोटी चीजों को छोड़कर ऊपर उठना होगा। शांति

का मूल्य है मोह-वृत्ति का परित्याग और आध्यात्मिक सम्पत्तियों को एकत्र करना।

३४१. सावधान रहो, घृणा, द्वेष, निन्दा, चुगली आदि दुष्ट मनोविकार तुम्हारी सम्पत्ति को लूट न लें। काम-क्रोध के दम्भ भरे कूड़े-कर्कट को बाहर फेंक कर मन को निर्मल रखिये।

३४२. प्रभु विश्वास की कमी ही सारे दुःखों और चिन्ताओं की जड़ है।

३४३. मृत्यु का भय त्याग दीजिये, जन्म और मृत्यु का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। जब वहां से बुलावा आयेगा चले जाना होगा, उसमें भय की क्या बात? जगत् के प्रति जितनी मनुष्य की आसक्ति, मोह होगा, मृत्यु में उतना ही कष्ट और भय होगा, इसलिये आसक्ति, मोह कम करते जाइये और सुखी रहिये।

३४४. जगत् के मोह जाल से दूर रहकर हमें परमानन्द प्राप्त करना है। इन्द्रियों के गुलाम नहीं बनना है। दयानिधि प्रभु की असीम अनुकम्पा पर विश्वास रखने से सब काम सुगमता से हो जाते हैं।

३४५. ईश्वर में विश्वास न रखने वाला व्यक्ति उस आन्तरिक शान्ति, तृप्ति, सन्तोष का अनुभव नहीं कर सकता जो भक्त परमेश्वर के भजन ध्यान में किया करता है।

३४६. नास्तिक व्यक्ति उस आकाश बेल की तरह है, जिसकी जड़ भूमि पर नहीं है।

३४७. जीवन विकास के लिये संसार से अनासक्त रहना ही श्रेष्ठ है। संसार के पदार्थों की नश्वरता को समझिये, नश्वरता समझते हुए पृथक् रहकर उनका उपयोग करते चलिये। यह सावधानी रखिये कि सांसारिकता अथवा दुनियाँदारी में आप ऐसे न फंस जायें जैसे शूकर कीचड़ में लिप्त हो जाता है। वासना के कीड़े न बनिये। त्याग, सहानुभूति, दया, उदारता आदि दिव्य सम्पदाएं ही धर्म की सच्ची किरणें हैं। इनसे ही मनुष्य वास्तविक मनुष्य बनता है।

३४८. जो व्यक्ति अपना संकल्प बार-बार बदलता है वह वास्तव में कुछ नहीं कर सकता।

३४९. अशान्ति का एक मुख्य कारण यह है कि नित्यप्रति के व्यवहार में हम दूसरों से बहुत अधिक प्रेम, सहानुभूति की आशा रखते हैं। अमुक से अमुक समय में हमने भलाई की थी, इसको हमने बड़ा कष्ट उठाकर पालन-पोषण किया था, अब वह हमें लाभ पहुँचायेगा, हमारी सेवा करेगा, हमारा विशेष ध्यान रक्खेगा यह सब ऐसी थोथी आशायें हैं जो आजकल के कठोर संसार में बहुत कम पूर्ण होती हैं। आप जिनसे आशायें लगये रखते हैं वे ही आपको कष्ट देते हैं, आपकी सहायता

नहीं करते, अतः आप दूसरों से कुछ भी आशा न रखिये। आजकल के युग में यदि दूसरे आपके लिये कुछ कर दें तो यह उनकी उदारता है। आप तो अपने दिल में यह मानिये की हम स्वय ही अपने लिये हैं, भगवान् के सिवाय कोई दूसरा साथी नहीं है। दुनिया का लम्बा रास्ता हमें स्वयं ही तय करना है।

३५०. संसार की नाना वस्तुओं का मोह आत्मा को बेड़ियों में बांध देता है। छोटी-छोटी वस्तुओं में मनुष्य की मनोवृत्ति संलग्न रहती है, जितना अधिक मोह, उतना ही अधिक बन्धन, उतनी ही अधिक मानसिक अशांति। संसार की चमक-दमक में मनुष्य जितना फंसेगा, उतना ही प्रभु से दूर रहेगा।

३५१. धन की तृष्णा, भोग-विलास की कामना आत्मा के बन्धन हैं। इनमें से प्रत्येक में बंधकर मनुष्य तड़फड़ाया करता है। मोह के यह बंधन मजबूत जंजीरों में मनुष्य को बांधे रहते हैं। जब-जब इनमें से कोई भोग्य पदार्थ मनुष्य को खींच कर पुनः पहली अवस्था में ला पटकता है। मनुष्य की मुक्ति कहां और स्वतन्त्रता कैसी ?

३५२. यदि मनुष्य जरूरत से अधिक संसार में लिप्त हो गया, तो समझो कि उसने आत्म-तत्त्व को खो दिया।

३५३. जब मनुष्य को यह विश्वास हो जायगा कि

सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की अक्षय सत्ता से उसका स्थायी सम्बन्ध है, तब तमोगुण से उत्पन्न समस्त भय, शंकायें नष्ट हो जायेंगी। ज्यों ही मनुष्य को यह ज्ञान हुआ कि वह परमेश्वर का प्रिय पुत्र है, ईश्वर का अखण्ड, अटूट भण्डार उसके पास है, त्योंही वह अपने मन में एक अलौकिक शक्ति का तथा आनन्द का अनुभव करने लगेगा।

३५४. अनन्त शक्तिशाली परमात्मा से तुम जितना सम्बन्ध स्थिर करोगे, तुम्हें उतनी शक्ति और आनन्द प्राप्त होगा।

३५५. अपनी दृष्टि अन्तर्मुखी करो और हृदय में स्थित परमात्मा के प्रति मुड़ो। ज्यों-ज्यों तुम हृदय में गहरे उतरोगे, त्यों-त्यों ही तुम्हें परमेश्वर की समीपता का आनन्द प्राप्त होगा।

३५६. हमारी कितनी भारी भूल है, कितना बड़ा प्रमाद है कि हम परमात्मा के विचार के सामने अपना विचार रखते हैं, मानो वे विचार करना भी नहीं जानते।

३५७. भगवान् जब जो जैसे करें, वैसे होने दो, उसी में तुम्हारा परम-कल्याण है। आरम्भ से ही प्रभु की दया पर, अनुग्रह पर अपना सारा का सारा जीवन छोड़ देने वाले का वहाँ का और यहाँ का सारा भार भगवान् संभाल लेते हैं। बस एक बात करो, भगवान् की

कृपा पर अपने को छोड़ दो। हमारा क्या होगा, कब होगा, कैसे होगा, इस बात की चिन्ता ही छोड़ दो।

३५८. प्रभु की प्राप्ति ही मनुष्य का चरम और परम उद्देश्य है। उसे भूल कर संसार में आसक्ति रखना, इसमें मोह रखना अमृत को छोड़कर जहर पीना है।

३५६. जिस वस्तु से हमारा एक दिन बिल्कुल कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा, उस वस्तु के लिये भगवान् को भूलना कितनी बड़ी मूर्खता है। पैदा हुए, मर गये। न भगवान् का स्मरण है, न अपने स्वरूप की स्मृति, यह तो मानव जीवन का सर्वथा दुरुपयोग है। असली बात है भगवान् के लिये ही जीवन बिताना।

३६०. भय और चिन्ता इसीलिये है कि प्रभु पर विश्वास नहीं, जब एक साधारण सिपाही के साथ होने पर हमारा सारा भय भाग जाता है, फिर जिस क्षण यह विश्वास हो जाय कि सर्वशक्तिमान् भगवान् नित्य निरन्तर हमारे साथ हैं, उसके बाद क्या भय रह सकता है?

३६१. भगवान् की कृपा पर विश्वास, आत्मा की अमरता पर विश्वास तथा तीसरी बात अपने प्रारब्ध पर विश्वास। यदि इन तीन बातों पर विश्वास हो तो फिर किसी बात की किसी समय भी चिन्ता नहीं हो सकती।

३६२. संसार में घटना भले ही कुछ भी क्यों न हो, पर उसमें सुख-दुःख का होना हमारी भावना पर निर्भर है।

३६३. ध्यान से देखें तो वास्तव में सारी चीजें भगवान् की हैं। उन पर उन्हीं का अधिकार है। मनुष्य को तो केवल मिथ्या ममत्व त्यागना है। चीजें भगवान् की होकर आपके पास ही रहेंगी। जो पदार्थ अब दुःख देते हैं वे ही भगवान् के बना दिये जाने पर उनमें से ममता निकल जाने पर सुख देने वाले हो जायेंगे, उनकी ममता और आसक्ति ही मनुष्य को दुःख देती है।

३६४. जब तक भगवान् की ओर मुख नहीं हो जाता तब तक यथार्थ में सुख एवं सुविधाएं नहीं मिल सकतीं। मनुष्य यही भूल करता है कि सुख और सुविधायें तो चाहता है पर चलता है भगवान् की तरफ पीठ करके।

३६५. पर निन्दा, पर चर्चा सुनने में तो बड़ी मीठी लगती हैं, पर हैं विषभरी बेल, इनसे सर्वथा दूर रहो।

३६६. स्पष्टवादी बनने के बहाने किसी का जी दुःखाने वाली बात कभी भी मुँह से न निकालो। सरल बनो, बनावट छोड़ो, जीवन में सीधापन लाओ, सन्तोष धारण करो। याद रक्खो भगवान् को सरलता और सन्तोष बहुत प्रिय हैं।

३६७. लोगों को कुछ भी कहने दो, वे तो कहेंगे ही, अपने कल्याण मार्ग से कभी पैर पीछे मत हटाओ।

३६८. क्रोध में जब जबान खुलती है तब विवेक

की आंखें बन्द हो जाती हैं। वही सच्चा वीर है जो मन के क्रोध को मन में ही मार डाले, बाहर प्रकट होने ही न दे। और वह तो सर्वविजयी है जिसके मन में कभी क्रोध उत्पन्न होता ही न हो।

३६६. दोष देखने वाला सदा ही घाटे में रहता है। उसका जीवन ही दोषमय बन जाता है।

३७०. सच्चा ज्ञान तो वही है जो आचरण में उतर आये, नहीं तो ग्रन्थ के रट लेने से क्या होता है? गधा चन्दन का भार ढोता है पर उसे उसके महत्व का कुछ भी पता नहीं होता।

३७१. ऊपर से मनुष्य जैसा दिखाई दे, उससे कहीं अच्छा अन्दर से होना चाहिये।

३७२. भगवान् को छोड़कर किसी दूसरे की आशा करना, भरोसा करना, विश्वास करना पाप है।

३७३. शब्दों के उच्चारण में प्रधान बात है परिमित बोले, शुभ बोले और बिना आवश्यकता कुछ न बोले।

३७४. भय, चिन्ता, विषाद, शोक का प्रधान कारण भगवान् पर अविश्वास है। भगवान् पर विश्वास न होने से और संसार के पदार्थों पर मोह होने से ही भय चिन्ता आदि उत्पन्न होते हैं।

३७५. भगवान् का जो कुछ भी विधान है वह हमारे लिये परम मंगलमय है, ऐसा विश्वास हो जाय

तो भय रहे ही नहीं। परन्तु हम तो अपने मन की बात कराना चाहते हैं इसी से भय चिन्ता आदि में डूबे रहते हैं।

३७६. प्रारब्ध को तो कोई पलट नहीं सकता, पर दुःख से छुटकारा पा सकता है। वह ऐसा बन सकता है कि दुःख नाम की वस्तु उसके लिये कहीं रहे ही नहीं।

३७७. सुख, शान्ति, आनन्द कहीं बाहर नहीं हैं। ये सब हमारे अन्दर हैं, और अन्दर की चीजें मिलेंगी अन्दर ही से। यदि हम बाहर इन चीजों को पकड़ना चाहेंगे तो उत्तरोत्तर इनसे दूर ही हटते जायेंगे।

३७८. जहाँ इन्द्रियरूपी झरोखों से विषयरूपी वायु आई कि ज्ञानरूपी दीपक को बुझा देगी, इन झरोखों को बन्द रक्खो, इन्हें खोले रखने में खतरा यही है कि जहाँ जोर का झोंका आया, कि फिर अंधेरा हो जायेगा और गड्ढे में गिरना पड़ेगा।

३७९. भगवान् अपने भक्त की चिन्ता ठीक वैसे ही करते हैं जैसे माता अपने अबोध दुधमुँहे बच्चे की।

३८०. हम घर के मालिक बने हुए हैं। हमें चाहिये कि इस मालिकपने को छोड़कर हम घर के मुनीम बन जावें, फिर यह घर हमारा नहीं, भगवान् का है और इसका हानि-लाभ भी उसी का है।

३८१. यह अटल नियम है कि जहाँ जब हमने प्रभु

की सत्ता को स्वीकार करना छोड़ा कि बस वहीं रास्ता भूले। सुन्दर सड़क से हटकर उधेड़बुन के बीहड़ जंगल में भटकने लगे। चिन्तारूपी कांटों से हमारे अंग छिदने लगे। दुःखरूपी दावनल की लपटों से सारा शरीर, मन, प्राण सब कुछ झुलसने लगा। कहीं कोई रक्षक नहीं, पथ दिखाने वाला नहीं, आगे निराशा का घोर अंधकार छाया हुआ है। प्रभु की उपेक्षा करते ही मनुष्य की ऐसी दुर्दशा हो जाती है।

३८२. प्रभु तो सर्वत्र हैं ही, किसी के न मानने से भी उनकी सत्ता वैसी ही रहती है; हां, न मानने वाला मानने के कारण होने वाले लाभ से वंचित हो जाता है। उन्हें न मानने का ही परिणाम है जीवन में उधेड़बुन, दुःख ज्वाला। अन्यथा इनका अस्तित्व ही नहीं है। क्योंकि सर्वत्र प्रभु ही परिपूर्ण हैं, सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। जो मनुष्य चाहे वही इस स्थिति का अनुभव कर सकता है। पर इसके लिये उसे इस ओर मुड़ना होगा, तथा अन्य समस्त सांसारिक कामनाओं, इच्छाओं को छोड़ना पड़ेगा।

३८३. यदि हम प्रभु पर पूर्ण विश्वास कर लें, तो फिर हमारे जीवन में पद-पद पर जो नई-नई उलझनें आती हैं, एक का समाधान होने नहीं पाता कि दूसरी आ घेरती है, वे न आवें।

३८४. हममें से अधिकांश मनुष्यों के हृदय में जो

दुःख की भट्ठी जलती है वह शान्त हो जाय, उसके स्थान पर सुख का एक शीतल शान्त स्रोत उमड़ चले, कि उसकी धारा में निमग्न होकर शीतल हो जावें, हृदय में ठंडक ही ठंडक बनी रहे।

३८५. यदि प्रभु को ही चाहने लगें, अपनी कामना की दिशा बदल दें, संसार की ओर से मोड़ कर उसे प्रभु की ओर कर दें, तो बस हमें वे अपना लेंगे।

३८६. समय का सच्चा सदुपयोग तो बस यही है कि हम प्रभु की खोज में जुट जावें। और काम तो जैसे होने होंगे हो जायेंगे, हमारे बिना भी दूसरों के द्वारा हो जायेंगे, पर यह काम तो हमें ही करना पड़ेगा, हमारे ही करने से होगा, दूसरा कोई भी हमारे बदले हमारे लिये इसको नहीं कर सकेगा, अतः इसी में हमें लगना है, प्रभु को ही ढूंढने चल पड़ना है।

३८७. यहाँ के सभी सुख ऐसे हैं जैसे कि अपने ही अंगों को काट कर अपनी ही भूख मिटाई जावे। यहाँ एक सुख को प्राप्त करने का मतलब ही यह होता है कि दूसरे तीन दुःखों को अपने पास बुलाने का निमन्त्रण दे दिया जावे। यहाँ जो भी कोई विषय सुख कमाया जाता है वह सबका सब अपने आत्म-सुख को बेचकर अथवा भुलाकर कमाया जाता है। इसलिये शास्त्र और सन्त महात्मा कहते हैं कि इस बखेड़े को छोड़कर निर्विकल्प

अवस्था के सुख का अनुभव करो।

३८८. प्रभु हमें जो कुछ भी देते हैं उसमें हमारी उन्नति, उत्थान होना निश्चित है, परन्तु हम उसे स्वीकार करना नहीं चाहते, जिन्हें प्रभु की सत्ता में विश्वास नहीं, जो प्रभु को नहीं मानते, उनकी बात दूसरी है, परन्तु जो अपने को आस्तिक कहते हैं वे भी अपने मन के प्रतिकूल किसी भी विधान को स्वीकार करना नहीं चाहते। मन-चाहा होने पर बड़ी आसानी से झट कहेंगे कि प्रभु की बड़ी कृपा है पर कहीं मन के विरुद्ध हुआ तो उदासी आये बिना नहीं रहती। वास्तव में यह प्रभु की कृपा का अधूरा ही दर्शन है, पूरा दर्शन तो वह है जब कि हमारे लिये कुछ भी प्रतिकूल न रहे।

३८९. हम पद-पद पर भयभीत होते रहते हैं इसका कारण है भगवान् में अविश्वास, हमें उन पर विश्वास नहीं, इसलिये हम डरते रहते हैं, डर-डर कर दुःखी होते रहते हैं। हाय रे ऐसा हो गया तो फिर क्या होगा ? ऐसा न हुआ तो क्या दशा होगी ? इन चिन्ताओं के जाल में पड़े रहने के कारण हमारा दुःख बढ़ता रहता है, हम प्रभु की ओर नजर उठा कर देखते तक नहीं, यदि उनकी ओर देखने लग जायें तो प्रत्येक भय से मुक्त हो जावें, फिर भय कहाँ और दुःख कहाँ ?

३९०. हमें जो करना चाहिये वह तो हम करते नहीं,

और जो नहीं करना चाहिये वह करते रहते हैं। यह बात नहीं कि हमें करने एवं न करने योग्य का पता न हो। पर हम इसकी उपेक्षा करते हैं। संसारी पदार्थों से सुख पाने की लालसा में न जाने कितनी बार, कितनी बुरी तरह से हम ईश्वरीय नियमों को तोड़ देते हैं, और सत्य-पथ से दूर हो दुःख का बोझ उठाये रहते हैं।

३९१. प्रभु सर्वदा हमारी बाट देख रहे हैं, हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब हम बाहर की ओर शान्ति तथा सुख ढूंढना छोड़कर भीतर की तरफ चल पड़ें, उनसे जा मिलें, उनसे मिलकर हमारी जलन शान्त हो जाय, सदा के लिये हमें पूर्ण शान्ति मिल जाय। पर हम तो, उस ओर जा रहे हैं जिधर शान्ति मिलने की बात ही नहीं है। चाहते हैं हम शान्ति-सुख को, हममें से प्रत्येक निरन्तर शान्ति ही ढूंढ रहा है, पर ढूंढ रहा है वहां जहां शान्ति नहीं है। शान्ति सुख कहीं बाहर नहीं, हमारे भीतर ही है। किसी भक्त ने कहा—

"बाहर के पट बन्द कर अन्दर के पट खोल।"

तब शान्ति, आनन्द की प्राप्ति होगी।

३९२. इन संसारी पदार्थों से जीव की भूख कभी भी मिट नहीं सकती। क्योंकि जीव परमात्मा का अंश है, उसका पुत्र है, तथा चेतन है, और पदार्थ प्राकृत तथा जड़ है। चेतन की भूख जड़ पदार्थों के द्वारा कैसे मिट

सकती है। भूख है पेट में और हलवा बांधा जावे पीठ पर तो भूख कैसे मिटे, प्यास लगने पर गर्म-गर्म बढ़िया हलवा खाने से भी प्यास नहीं मिट सकती। भूखे व्यक्ति की भूख ठण्डा जल पीने से कैसे निवृत हो सकती है। इसी प्रकार जीव को प्यास तो है अनन्त आनन्द-स्वरूप परमात्मा की, वह उस प्यास को मिटाना चाहता है जड़ पदार्थों के द्वारा। इसी कारण सदा अशान्ती दुःख, रहता है। उलटी राह चलने से गन्तव्य स्थान पर कैसे पहुँचेंगे। चाहे सारी आयु जीव ऐश्वर्य-संग्रह और भोगों के भोगने में लगा रहे तो भी उसकी भूख कभी नहीं मिट सकती, उसे शान्ति नहीं मिल सकती। शांति तो तभी मिलेगी, जब कामना का अत्यन्त अभाव होगा, तृष्णा-रूपी रोग के चले जाने पर हर सुख सहज ही आ जायेगा, जब तक पदार्थों की लोलुपता है, दासता है, तब तक सुख कहां ? दासता, लोलुपता मिटने पर ही सुख मिलेगा।

जब तक चाह है तब तक चिन्ता नहीं मिटती और जब तक चिन्ता नहीं मिटती, तब तक सुख नहीं मिल सकता।

"चाह गयी चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह ."

३६३. अभिमानी और लोभी को कभी शान्ति नहीं मिल सकती।

३६४. वह बड़ा दुःखी रहता है जिसका सुख मधुर

शब्दों और अपने से बाहर की वस्तुओं पर आश्रित रहता है।

३९५. जो मनुष्य अपनी भूलों और कमज़ोरियों को प्रकट करने से डरता है वह सत्य का पुजारी कभी नहीं बन सकता।

३९६. जल में नाव रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर नाव में जल नहीं रहना चाहिये। इसी प्रकार साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं, पर साधक के भीतर संसार नहीं रहना चाहिये।

३९७. संसार कच्चा कुआं है इसके किनारे पर सावधानी से खड़े होना चाहिये, तनिक सी असावधानी होते ही कुएं में गिर पड़ोगे, फिर निकलना कठिन हो जायेगा।

३९८. जो रास्ता भूलकर भटक रहा है वह तो एक दिन ठीक मार्ग पा लेगा, परन्तु जो अपने स्थान से चला ही नहीं है उसके विषय में क्या कहा जाये ?

३९९. जितना प्रयत्न हम भला कहलाने के लिये करते हैं उससे आधा प्रयत्न भी भला बनने के लिये नहीं करते। यह कितने आश्चर्य की बात है।

४००. किसी ने कोई गलती की, आपको उस पर खूब क्रोध आया। आप जरा ठंडे दिल से सोचिए कि क्रोध करना क्या एक बड़ी भारी गलती नहीं है ?

४०१. कामनाओं का दास भी बना रहे और सुख-

शान्ति भी प्राप्त कर ले, यह असम्भव है।

४०२. शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है जो सदा अन्दर गड़बड़ मचाया करता है, हमें उन विचारों की अनुभूति करने की आवश्यकता है जो जीवन-निर्माण में सहायक हों। यदि आप केवल पाँच-चार अनुभूत विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लें तो आप एक पुस्तकालय को कण्ठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो जायेंगे।

४०३. अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, नहीं तो ठोकरें खाते रहोगे। अपना पूर्ण विश्वास अपनी आत्मा में रक्खो, सदैव अपने केन्द्र में रहो, फिर तुम्हें कोई भी चीज गिरा नहीं सकेगी।

४०४. नम्रता का कवच पहन लेने पर आपका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। कपास की रुई तलवार से भी नहीं कटती।

४०५. हम दूसरों को बड़ी कठोरता से सुधारना चाहते हैं परन्तु अपना सुधार नहीं करते।

४०६. मनुष्य को चाहिए कि वह अपना काम देखे, दूसरों के काम में नुकताचीनी न करे।

४०७. शत्रु से शत्रुता करना वैर को बढ़ाना है, दूर करने का उपाय तो प्रेम है।

४०८. सावधान रहना, जो मनुष्य तुम्हारे से दूसरों

की निन्दा करता है वह दूसरों से तुम्हारी भी निन्दा अवश्य करेगा, ऐसे आदमी की बातों में मत फंसना।

४०९. जिस प्रकार वृक्ष में पत्ते बहुत हो जाने पर फल कम लगते हैं इसी प्रकार जो बहुत बोलता है उससे काम कुछ नहीं होता।

४१०. मनुष्य-जन्म की सफलता प्रभु दर्शन कर लेने में ही है।

४११. मनुष्य बहुत से रास्तों पर चलता है तो भटक जाता है जैसे चटोरे आदमी बहुत कुछ खाकर अपने पेट की अग्नि को मन्द कर लेते हैं।

४१२. हमें बालक बनना चाहिये।

मोह का संस्कार भी बड़ा भयंकर होता है। मोह कई प्रकार का होता है—धन का मोह, तन का मोह, सम्बन्धियों का मोह। यह साधक के पाँव को जकड़ लेता है, उसको आगे बढ़ने नहीं देता, यह उसको कल्याण मार्ग से रोकता है पर साधक तो सूरमा होता है उसको इस मोह पर विजय पानी ही चाहिये।

४१३. साधक जब कहीं अवसर हो, सबकी सुने, पर अपने को खोये नहीं, अपनी साधना पर पूरा विश्वास रक्खे, उसका निश्चय बलवान होना चाहिये, अटल होना चाहिये चट्टान की तरह।

४१४. सत्संग में सुनी बातों पर ध्यान, मनन तथा

आदर भाव रखना चाहिये। उपासना प्रथम मिलना जुलना बाद में। पहले मुख्यरूप से अपने प्रभु से नियत समय पर मिलें, बाद में मित्र से यदि मिलना हो तो मिलें, उपासना को प्रथम स्थान दें, अन्य कार्यों को गौण समझें।

४१५. जो विद्यार्थी विशेष नम्बरों से पास होना चाहता है उसे अधिक परिश्रम करने की आवश्यता होती है ऐसे ही अध्यात्म-मार्ग की बात है।

४१६. जीवन को सादा, सरल और सच्चा बनाओ।

४१७. जो बच्चा मां पर निर्भर रहता है उसकी सारी चिन्ता माता करती है। पंडित बनकर जो माँ के पास जाता है उसमें नम्रता कहां ?

४१८. भगवान् में दृढ़ विश्वास, अविचल निश्चय, अटूट आस्था होवे। कोई हजार दलील दे, प्रमाण दे, विचलित न होओ।

४१९. प्रत्येक व्यक्ति को पुस्तक पढ़ते और सत्संग की बातें सुनते यह समझना चाहिये कि ये बातें मेरे लिये ही लिखी गई हैं और मेरे लिये ही सुनाई जा रही हैं। उन पर मनन करके उन्हें अपनाना चाहिये। हम पढ़ते-सुनते तो बहुत पर अमल कम करते हैं।

४२०. अपनी बड़ाई का गोबर जमा नहीं करना चाहिये, जब भला आदमी गन्दे आसन पर बैठना पसन्द

नहीं करता, तो भगवान् हमारे राग-द्वेषपूर्ण अन्तःकरण में कैसे बैठ सकेंगे।

४२१. साधक का जीवन निराला होना चाहिये, उसका जीवन बाजारी जीवन से श्रेष्ठ होना चाहिये, क्रोधी झगड़ालू, ईर्ष्यालु होवे तो विशेषता क्या हुई।

४२२. कुछ लोग शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख रह जाते हैं जो क्रियवान् है वही विद्वान् है इसलिये पढ़कर, सुनकर, मनन करना चाहिये, पढ़ना कम और मनन अधिक करना चाहिए।

४२३. दाल-भात खाने के लिये मत जीओ, जीवन को मर्यादा में लाओ, और आत्म-दर्शन करके इसे सफल बनाओ।

४२४. संसार के सभी सुख भी चाहियें और भगवान् भी चाहियें, ऐसा कभी नहीं हो सकता।

४२५. जो भगवान् को चाहते हैं और वास्तव में चाहते हैं तो उन्हें भगवान् मिल जाते हैं।

४२६. जैसे जल में डूबने वाला सारे बल से बचने की कोशिश करता है उसी प्रकार साधक को कोशिश करनी चाहिये।

४२७. दुःख केवल उन्हीं के भाग्य में आता है जो शरीर को आत्मा मान बैठते हैं।

४२८. जहां-जहां धूम होगा, वहाँ-वहाँ अग्नि होगी,

इसी प्रकार जहां-जहां अहंता ममता होगी, वहां से दुःखों की सेना को कौन टाल सकता है।

४२६. आत्म-वहिर्मुखी सम्पूर्ण जीव परमानन्द को छोड़कर धूल में लिपटे हुए गुड़ के कणों पर मक्खियों और च्यूंटियों के समान चिपटे रहे हैं यह कितने दुर्भाग्य की बात है।

४३०. जैसे शारीकि व्यायाम से शरीर स्वस्थ रहता है यदि कोई कहने लगे कि मेरे पास तो व्यायाम करने घूमने आदि का समय नहीं है तो डाक्टर कहते हैं कि उसे रोगी होने के लिये समय विवश होकर निकालना पड़ेगा, इसी प्रकार जो मनुष्य भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय, आदि के लिये समय नहीं निकाल सकता, उसे दुःखी रहने, वार-बार जन्म लेने और अशान्त रहने के लिये समय निकालना ही पड़ेगा।

४३१. यदि सारी आयु भी सत्संग में बितावे, पर सत्संग में सुने उपदेश पर आचरण न करे तो कोरे का कोरा रह जाता है, जैसे गंगा में पत्थर वर्षों पड़े रहने पर भी कोरे ही रहते हैं, एक बूंद भी अन्दर नहीं जाती।

४२०. वही धीर, बुद्धिमान् और शूरवीर है जो अपने मार्ग से कदम पीछे नहीं हटाता, अपने निश्चय का त्याग नहीं करता, अपनी साधना पर डटा रहता है, क्योंकि एक दिन शरीर तो गिरना ही है, प्रभु की ओर

साधना करता हुआ शरीर छूटेगा तो सद्गति होगी, संसार में आसक्त रहते शरीर छूटा तो फिर गर्भवास।

४३३. चाहना, कामना, इच्छा तो आप करते हो, रक्षा और से चाहते हो, भला तब कौन है जो आपकी रक्षा कर सके। चाहना ही प्रभु के मिलने में प्रतिबंध है।

४३४. जिज्ञासु को समझना चाहिये कि बढ़ी हुई क्रोध आदि वृत्तियां दुराचार में ही शामिल हैं। इसलिये जिज्ञासु को बड़ा सरल, सच्चा, शान्त स्वभाव का बनने की चेष्टा करनी चाहिये। वह कभी आवेश में न आवे, वह क्रोध को सर्व बुराइयों की जड़ जाने, अपना जीवन मीठा मृदुल बनावे।

४३५. परनिन्दा और चुगली, ये दो दुर्गुण बहुत बुरे हैं। पराई निन्दा करते रहना, अपने अन्दर दूसरे मनुष्य के दुर्गुणों के संस्कारों को इकट्ठा करना ही होता है। निन्दा करने वाले का अपना ही जीवन बिगड़ता है। मनुष्य के अपने अन्दर ही बहुत छल-छिद्र हुआ करते हैं। यदि प्रतिदिन उनकी आलोचना और पश्चाताप किया जाय तो फिर दूसरों के दोष देखने की दृष्टि ही नहीं रहती। प्रायः वही लोग दूसरों के दुर्गुण के वर्णन करने में लगे रहते हैं, जो अपने भीतर मुँह डालकर, अपने किये कर्मों के चिट्ठे को नहीं देखते। जिज्ञासु, जो आत्म-निरीक्षण करने वाला है, उसे तो यह अवसर ही

नहीं मिलता कि वह पराये पर्दे उठता फिरे।

४३६. अरे मनुष्य! चिन्ता को छोड़ दे, निश्चिन्तता का सुख भोग। तेरी कमाई हुई इस चिन्ता को भला बता कि दूसरा कौन छुड़ाने आयेगा।

४३७. मलयागिरि के सुवासित चन्दन वृक्षों के आस-पास के बहुत से वृक्ष चन्दन ही बन जाते हैं किन्तु वहाँ के बाँस और करील के वृक्ष ज्यों के त्यों बने रहते हैं चाहे उनकी जड़ें चन्दन के वृक्ष से ही क्यों न मिली रहें। समझते हो ऐसा क्यों होता है? क्योंकि इन पेड़ों में गांठें होती हैं। इसी प्रकार सन्त-महात्माओं का संग करने वाले बहुत से सन्त ही बन जाते हैं। किन्तु जिनके कलुषित हृदय में ईर्ष्या, द्वेष, मदमत्सर और परदोष-दर्शन आदि दुर्गुणों की गांठें पड़ी हैं वे कदापि सन्त नहीं बन सकते चाहे वे रात दिन सन्त महात्माओं के निकट सम्पर्क में ही रहें।

४३८. विचार करो इस्तीफा देना अच्छा या बरखास्त किया जाना अच्छा। सब बोल उठेंगे, इस्तीफा देना अच्छा। इसी प्रकार याद रक्खो, मृत्यु से पहले सांसारिक वस्तुओं का त्याग नहीं किया, उनसे ममत्व नहीं हटाया, अपने को इस्तीफा देकर अलग नहीं किया, तो जब तुम्हें घर से बरखास्त किया जावेगा सब वस्तुएं तुमसे जबरदस्ती छीनी जावेंगी, उस समय तुम्हें महान् दुःख होगा।

इसीलिये भला इसी में है कि स्वयं इस्तीफा देने की तय्यारी शनैः-शनैः करना प्रारम्भ कर दें।

४३९. असली मोती प्राप्त करने के लिये समुद्र की तह में गहरा गोता लगाना पड़ता है जल के ऊपर ही ऊपर हाथ-पैर पटकने से क्या कभी मोती प्राप्त हो सकते हैं, कदापि नहीं। इसी प्रकार प्रभु प्राप्ति के लिये ऊपरी वेश-भूषा से काम नहीं चलेगा, उसकी प्राप्ति के लिये तो हृदय में गहरा गोता लगाना पड़ेगा।

४४०. एक मन दूध को मीठा बनाने लिये कम से कम तीन सेर चीनी की जरूरत है किन्तु सारे दूध को फाड़ देने के लिये एक तोला खटाई ही काफी है। इसी प्रकार बहुत दिनों से सत्संग द्वारा शुद्ध किये अन्तः-करण को चण भर का कुसंग मलिन बना देता है, पतन के गहरे गढ़े से बचने के लिये कुसंग से सदैव सावधान रहो।

४४१. शरीर पर भीगा हुआ मलमल का कुर्ता चिपक जाता है, तब उसको उतारने में बड़ा कष्ट होता है। परन्तु सूखा हुआ बड़ी आसानी से उतर जाता है, इसी प्रकार इस शरीर और शरीरसम्बन्धी पदार्थों में, व्यक्तियों में आसक्ति हो गई तो शरीर छोड़ते समय अत्यन्त कष्ट होगा और यदि किसी से आसक्ति न की तब मरते समय कोई कष्ट नहीं होगा।

४४२. एक निश्चित मार्ग पर बराबर चलने वाले को सफलता मिलती है। इधर-उधर बहकने अथवा उस मार्ग को छोड़ देने से पहला किया हुआ परिश्रम व्यर्थ जाता है और सफलता बहुत दूर जा बैठती है। सफलता के लिये जुट कर अथक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

४४३. हम वास्तव में जो कुछ हैं उसी तरह हमें अपने को प्रकट करना चाहिये। जो हम नहीं हैं उसे हमें नहीं दिखाना चाहिये। यदि हम में महात्माओं के गुण नहीं हैं तो महात्मा बनने का ढोंग नहीं करना चाहिये। पाखंडी समझता है कि मैं संसार को और ईश्वर को धोका दे सकता हूँ, किन्तु ऐसा होता नहीं। हाँ, वह अपने को अवश्य धोका दे रहा है और इस कपट के लिये ईश्वर की ओर से उसे उचित दण्ड भी भोगना पड़ता है।

४४४. सफलता के लिये आवश्यक है कि मनुष्य ईश्वर में, उसकी कृपा में, अपनी साधना में और अपनी शक्ति में श्रद्धा और विश्वास रक्खे। यदि मनुष्य सफलता चाहता है और गिरना नहीं चाहता तो श्रद्धा, विश्वास की चट्टान पर अपने जीवन का महल बनावे।

४४५. इच्छाओं की पूर्ति क्षणिक और भ्रमात्मक है। वे इच्छायें कभी शान्त नहीं होतीं, उनका पेट क्रमशः और भी अधिक बढ़ता जाता है। इच्छा समुद्र की तरह अपार होती है, उसकी पूर्ति एक बार हुई कि उसकी चिल्लाहट

और भी अधिक बढ़ती जाती है। वह अपने भक्तों को सदैव तंग करती है अन्त में उनको शारीरिक-मानसिक वेदना पहुँचाती है। जिसके कारण उन्हें महान् कष्ट सहना पड़ता है। इच्छा के भीतर नाना प्रकार की यातनायें भरी हुई हैं। इच्छा का परित्याग कर देने से ही सुख शान्ति मिलती है।

४४६. अस्वस्थ मन अस्वस्थ शरीर से कहीं अधिक शोचनीय है। अस्वस्थ मन से शरीर भी अस्वस्थ हो जाता है। बिगड़ा हुआ शेर इतनी हानि नहीं पहुँचाता जितना बिगड़ा हुआ मन।

४४७. भूत और भविष्य की परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ कर, और भूत तथा भविष्य के हवाई किले बनाना छोड़ कर, सामने निकल आओ और वर्तमान में अपनी शक्ति द्वारा साधन करो।

४४८. किसी कल्याणकारी काम को कल के लिये न टालो।

४४९. तुम्हारी संकल्प शक्ति ऐसी नहीं होनी चाहिये जो मोमबत्ती की लौ के समान तनिक सी वायु से बुझ जावे।

४५०. वास्तव में हमें दुःख इसलिये मिलता है कि हर बुरे विचार मन में रखते हैं और भगवान् पर विश्वास नहीं करते। हम स्वयं अंधेरे में घूमते हैं और भूख पर

भूल करते हैं और दुःख उठाते रहते हैं और फिर माथे पर हाथ रखकर रोते हैं और कहते हैं कि ईश्वर ने हमारी ऐसी दुर्दशा की है।

४५१. मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है। अपने को सुखी तथा दुःखी बनाना उसके अपने हाथ में है।

४५२. सुख और दुःख मनुष्य को कहीं बाहर से नहीं मिलते, वे अपने मन के भीतर भरे हुए हैं। कोई दूसरा हमें सुखी-दुःखी नहीं कर सकता। परिस्थितियों का भी कोई असर हमारे सुख-दुःख पर नहीं पड़ता। यदि हम दुःखी नहीं होना चाहते, तो हमें अपने विचारों को एकदम बदलना होगा।

४५३. सच बात यह है कि मनुष्य होने वाली बाहरी घटनाओं को तो नहीं बदल सकता, परन्तु अपने को ऐसा बना सकता है कि उनसे मनुष्य को कोई दुःख कष्ट न पहुँचे।

४५४. बाहरी चीजें हमें नहीं बांधतीं, हमारे विचार ही हमें बांधते हैं, अथवा मुक्त करते हैं। हम स्वयं अपने को बांधने के लिये हथकड़ियां तय्यार करते हैं। हम स्वयं अपने जेलखाने बनाते हैं और स्वयं कैदी बनकर उनमें रहते हैं। उसी प्रकार हम स्वयं अपने बन्धन को काट भी सकते हैं और अपने को मुक्त कर सकते हैं।

४५५. जब तक आप छोटी-छोटी बातों के लिये

अपने जीवन को वितयेंगे, तब तक आप परमानन्द का अनुभव नहीं कर सकते ।

४५६. अरे थके भाई ! व्यर्थ के प्रयत्न से क्या लाभ ? स्वार्थ के मिथ्या रेगिस्तान पर दौड़ना छोड़ और भीतर घुसकर अमृतरूपी सागर से अपनी प्यास बुझा ।

४५७. शंका, दुःख, चिन्ता, भय, क्षोभ का होना नास्तिकता के रूप हैं ।

४५८. कामनाओं से मुक्त अन्तःकरण की सन्तोष की वह अवस्था जिससे शान्ति तथा आनन्द प्राप्त होता है, सुख कहलाती है । अपनी इच्छाओं की पूर्ति में होने वाला सुख भ्रमात्मक और अल्पकालीन होता है । उसके बाद अपने अरमानों को पूरा करने की इच्छा और भी बढ़ जाती है । जैसे सागर की तृप्ति करना असम्भव है वैसे ही इच्छाओं की भी तृप्ति असम्भव है । जितना ही उसकी मांग पूरी की जाती है उतना ही वह और भी जोरों से चिल्लाहट मचाती है । यह भ्रम में पड़े अपने भक्तों से सदैव बढ़ती हुई सेवा की आशा करती है । और उसकी माँग उस समय तक बढ़ती ही जाती है, जब तक अन्त में शारीरिक या मानसिक व्यथा उसको गिरा कर दुःख की अग्नि में नहीं झोंक देती । अपनी आंखों पर स्वार्थ का पर्दा पड़ा होने से मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति में परमानन्द का स्वप्न देखता है लेकिन इन इच्छाओं

के पूरा होने पर जो सुख मिलता दिखाई देता है परीक्षा करने पर वह दुःख की हड्डियों को छोड़ कर शेष कुछ नहीं होता। सचमुच जो जितना ही अपनी इच्छाओं को बढ़ाता है वह उतना ही दुःखों को निमन्त्रण देता है और सदा दुःखी रहता है। इसलिये अनित्य वस्तुओं में लिपटना और उनके लिये बिलखना छोड़ कर आप अपने को उनसे परे ले जाइये, तब आप उस परमानन्द को प्राप्त कर सकेंगे।

४५९. यदि मनुष्य-शरीर प्राप्त करके-जन्म मरण के चक्कर से छूटने का प्रयत्न नहीं किया, तो उन पक्षियों के समान जो व्याध की फांसी से छूट कर भी फल आदि के लोभ से उसी वृक्ष पर विहार करते हैं, फिर बन्धन में पड़ जायेंगे।

४६०. अरे दुःखी जीवो! यदि तुम जीवन की समस्त चिन्ताओं से, समस्त क्लेशों से पीछा छुड़ाना चाहते हो तो भक्ति-रसायन का सेवन करो, इसके समान अमोघ दूसरी औषध नहीं है।

४६१. जैसे अपवित्र भोजन से अतिथि प्रसन्न नहीं होता, वैसे ही अशुद्ध अन्तःकरण से, निन्दा करने वाली वाणी से स्तुति-प्रार्थना करने पर परमात्मा प्रसन्न नहीं होता। अतिथि मित्र को भोजन परोसी गई थाली यदि गन्दी हो, तब उस भोजन को मित्र कैसे खायेगा! इसी

तरह यदि वाणी दूषित हो, तब भगवान् उससे की गई प्रार्थना कैसे स्वीकार करेगा।

४६२. जैसे विष पीने वाले का अमर होना कठिन है वैसे ही जगत् में आसक्त पुरुष का, मोह-ममता में फंसे हुए का कल्याण कठिन है।

४६३. सारा संसार क्या, प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है परन्तु संसार में ऐसा कौन सुखी मिलेगा, जिसे अनिच्छित दुःख का अनुभव न होता हो। यह हो सकता है कि कुछ देर के लिये जब मनुष्य के सम्मुख गोदी में सुख होता है तब उसी की पीठ पर चढ़ा हुआ दुःख दिखाई न देता हो, जो कि किसी समय भी वह दुःख उस सुखी की गोदी में कूद पड़ता है। और सुखी को अचानक दुःख के दर्शन से दुःखी होना पड़ता है।

४६४. आपको यदि सुख के पीछे छिपे हुए दुःख के दर्शन न हो रहे हों, तो सुख के अगल-बगल से झांक कर उसे देख सकते हैं।

४६५. रागी पुरुष की बुद्धि अपनी मानी हुई वस्तुओं में, माने हुए सम्बन्धों में खूंटे से बंधे हुए पशु के समान है।

४६६. कभी भी हताश न होना चाहिये, अटूट धैर्य रखते हुए निरन्तर श्रद्धापूर्वक प्रयत्न में लगे रहो, यदि तुम निरुत्साहित होकर उदासीन हो जाओगे तो

अपने मार्ग को ही खो दोगे। कारण यह है कि यदि कोई अपनी चिन्ता में अधिक व्यस्त रहता है तो वह अपना ही ध्यान-चिन्तन करता है न कि अपने आराध्य देव का। इसी कारण आराध्य देव के बीच में चिन्ता एक पर्दा बन जाती है। तुम्हें व्यर्थ चिन्ताओं, वेदनाओं से बचते रहने के लिये अपने आराध्य देव परमेश्वर का निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये।

४६७. किसी भी परिस्थिति से भयभीत मत होओ, सत्य मार्ग में गम्भीरता के बल से परिस्थितियों का सामना करो। कष्टों के मेघ कैसे भी काले क्यों न हों, परन्तु उसके पीछे पूर्ण प्रकाशमय एकरस परम सत्ता सूर्य की भांति सदा ही विद्यमान है। तुम अंधकार को देखकर क्यों घबराते हो, उसके पीछे हो उसे पार करने पर तुम अपने को आनन्द-प्रकाश में पाओगे।

४६८. अपनी साधना के मार्ग में ऐसे भावों को भूलकर भी मन में स्थान मत दो, जिनसे तुम्हारा अहित होता रहा हो या होने की सम्भावना हो।

४६९. दूसरों को तुम सदा ही प्रेम, दया एवं क्षमा की दृष्टि से देखो, परन्तु अपने ऊपर संयम की कड़ी दृष्टि रक्खो; तभी तुम उन्नत होओगे।

४७०. बीते हुए दुःखों का, बीती हुई दुर्घटनाओं का स्मरण कभी न करो।

४७१. तुम्हारे अन्दर शाश्वत शान्ति तो निवास करती है, परन्तु उसका अनुभव तुम्हें बाहरी सुखों की इच्छा में भटकते रहने के कारण नहीं होता।

४७२. तुम अपने प्रारब्ध को चाहे न पलट सको, परन्तु शुद्ध विवेक-बुद्धि द्वारा सुखद-दुःखद परिस्थितियों में अपने को शान्त, सम रख सकते हो।

४७३. साधक वही सावधान है जो आगे-पीछे का चिन्तन नहीं करता और वर्तमान का सदुपयोग करता है।

४७४. परमेश्वर का भजन-स्मरण-ध्यान जब कोई श्रद्धा-प्रेम से करने लगता है तब उसे आगे बढ़ाने के लिये, विवेक-वृद्धि के लिये प्रभु सत्संग सुयोग-सुलभ कर देते हैं। कदाचित् प्रभु कृपा से मिले हुये सत्संग का कोई उचित आदर न करे, यह उसका दुर्भाग्य ही कहना पड़ेगा।

४७५. लंगर से बंधी नाव जैसे प्रयत्न करने पर भी दूसरे किनारे पर नहीं पहुँचती, इसी तरह आसक्ति रखते हुए हम प्रयत्न करने पर भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते।

४७६. क्रोध करने वाला दूसरे की गलती का दण्ड आप ही भोगता है क्योंकि वह अपनी ही क्रोधाग्नि में जलता रहता है।

४७७. वासनाओं का दास, बुराइयों का वास और अन्त में नाश। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार

रूपी शत्रुओं की मार से दबा हुआ अज्ञानी भवसागर से पार उतरने का प्रयत्न न करके डूबा जा रहा है। यदि पार उतरना चाहे तो फेंक इस बोझ को।

४७८. यह जगत् जिस प्रकार का वास्तव में बना है, इसमें जीवन का लक्ष्य अपनी सुख और प्रसन्नता और सुविधा का सुरक्षित कर लेना नहीं है, अपितु अपने को धीरे-धीरे ईश्वर की ओर ले जाना है।

४७९. साधक को साधना में यह एक बहुत भारी विघ्न है कि वह अपने अन्तरात्मा में रहना नहीं जानता। उसमें अन्तरात्मा में रहने की संकल्प शक्ति का अभाव होता है। इसलिये जो भी बाह्य प्रकृति की परिस्थिति, सुख-दुःख, हानि-लाभ, आशा-निराशा, काम-क्रोध आदि की धाराएँ आती हैं वह उनके साथ मिल जाता है और उस समय के लिये तदाकार हो जाता है। तुम्हें सर्वदा अपने अन्तरात्मा में निवास करने का अभ्यास करना है। अपने आप को इन प्रकृति की धाराओं से पृथक् कर लेना है और ईश्वर का ही एकमात्र चाहना सीखना है।

४८०. सच्चा आनन्द तभी मिल सकता है जब मनुष्य लम्बी जीभ वाले कुत्ते के समान अपने लालची मन को सांसारिक विषयों से दूर रखे।

४८१. हे जिज्ञासु! प्रभु के लिए भेंट रूप में आत्मसमर्पण कर।

४८२. हे मनुष्य ! उस परमात्मा की शरण में जा, जो आत्मिक बल और मोक्ष का दाता है।

४८३. परमात्मा अपने प्यारे भक्त को कभी नहीं भूलता।

४८४. सच्चा मित्र वही है जो पाप से बचने के लिये सावधान करता रहे।

४८५. प्रभु हमें शरीर इसी लिये देते हैं कि इससे साधना करके उसके आनन्दमय रूप को प्राप्त करें।

४८६. हे जिज्ञासु ! तू उल्लू के समान मोह को छोड़ दे।

४८७. कुत्ते जैसे व्यवहार मत्सर से दूर रहो।

४८८. भेड़िये के समान क्रोध को त्याग।

४८९. चिड़िया के आचरण काम को नष्ट कर।

४९०. बाज की चाल मद को छोड़।

४९१. गीध जैसे लोभ के बर्ताव को भी हे आत्मन् ! तू अपनी महान् शक्ति द्वारा इस तरह नष्ट कर दे, जैसे शिला से मट्टी का बर्तन टूट-फूट जाता है।

४९२. आत्मा की प्यास बड़ी-बड़ी बातों से नहीं बुझती। प्रभु के सान्निध्य में ही मन को शान्ति मिलती है।

४९३. सबसे ऊँचा और लाभदायक ज्ञान, अपने को जानना तथा अपनी कमियों का अनुभव करना है।

४६४. उपदेश और सलाह देने की अपेक्षा दूसरों से उपदेश सुनना और सलाह लेना अच्छा है।

४६५. केवल इच्छामात्र से कुछ नहीं होगा, पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

४६६. मन के बहकावे में मत आइये।

४६७. अपनी दृष्टि को ईश्वर की ओर मोड़िये।

४६८. वीर बनिये, सदा प्रसन्न रहिये।

४६६. इन्द्रियों के गुलाम बन कर अपनी स्वतन्त्रता को मत खोइये, इसी जन्म में अपने जन्मसिद्ध अधिकार ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त कर लीजिये।

५००. यदि मनुष्य धनी होकर दानी नहीं, निर्धन होकर सन्तोषी नहीं, विद्वान होकर नम्र नहीं, अशिक्षित होकर, मितभाषी नहीं, मानव होकर प्रभु का भक्त नहीं, तो निस्सन्देह वह अपने दुर्भाग्य को ही परिपुष्ट कर रहा है।

५०१. जिसके जीवन में कोई संयम नहीं, उसका जीवन वायु के झोकों से चलने वाली बिना पतवार की नाव के समान है जो बीच में ही डुबा देगी।

५०२. मनुष्य बने हो तो मनुष्यता की रक्षा करो, मानव जीवन के परम लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त करने की साधना करो, जिससे मानव जीवन सफल हो।

५०३. जैसी भी परिस्थिति हो, मन को बिगड़ने

मत दो। इस संसार में तो गर्मी सर्दी, आंधी तूफान, सुख दुःख, अच्छा बुरा चलता ही रहता है परन्तु कुछ भी हो, तुम अपने मन में मैल न आने दो, इसे चिन्ता और दुःख से ग्रस्त न होने दो।

५०४. मानव सब कुछ जानता है यदि नहीं जानता तो अपने आप को नहीं जानता, उस के पास सब कामों के लिये समय है केवल अपने लिये नहीं।

५०५. जगत् का कोई भी विषय, कोई भी प्रलोभन कोई भी सुख हमारे मन को क्षणभर के लिये भी अपनी ओर न खींच सके, इसके लिये सदा सचेत रहना चाहिये।

५०६. संसार में जैसा होता रहा है वही होगा, इसमें कोई नई बात क्या है यहाँ का स्वरूप ही ऐसा है। अपनी ओर से किसी के साथ भी बुरा बर्ताव नहीं करना चाहिये, बस।

५०७. हम सब को ध्यान रखना चाहिये कि जो कुछ हम कर नहीं सकते, वह हमारा कर्त्तव्य नहीं है। इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

५०८. संसार में जितने भी दुःख हैं सब अपने बनाये हुए हैं।

५०९. जो कुछ भी संसार में पदार्थ हैं जिन्हें तुम अपना मानते हो, ध्यान रखो वे सब तुम्हारे लिये तो हैं पर तुम्हारे नहीं।

५१०. सबसे मूल्यवान है समय और मन इन दोनों को निरन्तर सावधानी के साथ परमार्थ साधन में लगाओ, न व्यर्थ खोओ, न प्रमाद करो।

५११. यदि कोई किसी को भगवान के भजन में लगाता है तो वह उसकी परम सेवा करता है क्योंकि इस से उसका भविष्य सुखमय होगा।

५१२. मनुष्य यदि प्रसन्न भी हो तो वह हमें क्या देगा। क्या वह मनुष्य के अभाव की निवृत्ति कर देगा, क्या वह हमारे कष्ट को दूर कर देगा। जो स्वयंम् अभाव ग्रस्त है, जो स्वयं तृष्णा के मारे व्याकुल है, जो स्वयंम् कामना की आग से जल रहा है वह दूसरों के अभाव की निवृत्ति किस वस्तु को देकर कर देगा? वह दूसरों की तृष्णा को कैसे शान्त कर देगा, वह दूसरों की कामना की आग कैसे बुझा देगा। भिखमंगा कैसे किसी दरिद्र की दरिद्रता को हटा सकता है इसलिये भगवान् को प्रसन्न करने का साधन करना चाहिये, वे सब कुछ कर सकते हैं।

५१३. धन शरीर निर्वाह के लिये आवश्यक है परन्तु उसे इतना आदर कभी मत दो कि जिस से वह भगवान् के आसन पर अधिकार जमा ले।

५१४. होता वही है और होगा वही, जो भाग्यचक्र का निर्माण करने वाले नित्य निर्भ्रान्त परम न्यायशील

हुआ सागर प्रभु ने रच रक्खा है। तुम अपने किसी भी उपाय से न उसे बदल सकते हो, और न उससे बच सकते हो। इसलिये शान्ति से उसे स्वीकार करो।

५१५. भगवान् पर दृढ़ विश्वास हुआ या नहीं, इसकी कसौटी है भगवान् के प्रत्येक विधान में सन्तोष है कि नहीं। जब तक उनके किसी भी विधान में विषाद-चिन्ता आती है तब तक यह स्पष्ट है कि हमारा भगवान् पर दृढ़ विश्वास नहीं हुआ।

५१६. मन और इन्द्रियों की बात का आदर न करके विवेक का आदर करना चाहिये, उसी के अनुरूप अपना जीवन बनाना चाहिये।

५१७. आज चारों ओर प्रचार की ध्वनियां सुनाई देती हैं विचार तो विरले ही कर पाते हैं। विचार करने वाले भी कुछ मिल जायेंगे, पर उनमें विरले ही उस पर आचरण करने वाले होते हैं।

५१८. यहाँ जो कुछ भी होता है उसमें मनुष्य सर्वथा निरुपाय है अतएव यहाँ की चिन्ता को छोड़ कर प्रभु में मन लगाना चाहिये।

५१९. मानव प्रत्येक वस्तु के मूल्य को जानता है परन्तु अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता।

५२०. पदार्थ पास हों, पर उनमें आसक्ति न हो।

५२१. कम खाना और कम बोलना कभी हानि

नहीं करते ।

५२२. हमें अपने मन को बीती हुई बातों से दुःखी नहीं करना चाहिये ।

५२३. बड़े कम करो, परन्तु बड़े वादे न करो ।

५२४. झूठे वादे से इन्कार अच्छा है ।

५२५. जीना यदि दिन पूरे करना है तो वह जीवन नहीं, ऐसा तो पशु करते हैं ।

५२६. जहाँ चाह है वहाँ राह निकल ही आती है।

५२७. आनन्द का सागर हमारे अन्दर भरा पड़ा है पर हमारी दृष्टि बाहर की ओर लग रही है। हीरों को छोड़ कर हम कंकर पत्थर का संग्रह कर रहे हैं ।

५२८. भोग का पुजारी सदा दीवालिया रहता है ।

५२९. जिसने जीने का उद्देश्य नहीं समझा उसका जीना वास्तव में जीना नहीं है, वह तो चलता फिरता एक मुर्दा है ।

५३०. मन भगवान् के रहने का मन्दिर है, इसे गन्दा मत करो ।

५३१. अपने दुःख का कारण किसी दूसरे को मत समझो ।

* इति शम् *

मुद्रक—प्रताप प्रिंटिंग प्रेस, लाहौरी गेट, दिल्ली—६

## ❀ भजन ❀

जगत् पिता के प्रेम जल से,
यह खेत मन का हरा हुआ।
तो अवश्य होगा कि एक दिन,
यह ही फूल फल से फला हुआ॥

चले चाहिये कि उपासना में,
न होने पावे तगाफली[1]।
है ओ३म् शब्द के जाप का,
तेरे मन में तार बंधा हुआ॥

ये उपसना का जो बाग है,
सुबह शाम इसकी तू सैर कर।
ये करेगा कुलफत[2] दूर सब,
ये सरूर[3] से है भरा हुआ॥

यहाँ रहती नित्य बहार है,
यहाँ से खिजां को फरार है।
जो गुज़र हो इसमें खयाल का,
रहे दिल का गुन्चा[4] खिला हुआ॥
यहाँ की फ़िज़ा[5] है दिलरुबा[6],
नहीं जिससे दिल हो कभी जुदा।

---

१ प्रमाद, २ दुःख, ३ प्रसन्नता, ४ कली, ५ बहार, ६ मनोहारिणी

यहाँ गुल अजब हैं खिले हुए,
यहाँ मोक्ष फल है लगा हुआ ॥
जो दग़ा फ़रेब से है अलग,
वही इसमें जाने का मुस्तहक़ ।
नहीं यह नसीब उसे हुआ,
जो विषय में होवे फँसा हुआ ॥
जो हों धर्म युक्त जती सती,
वही पा सके है यहाँ जगह ।
न सताये उसको क्लेश फिर,
रहे सब दुःखों से बचा हुआ ॥
जिसे कोशिशों के तुफ़ैल° से,
जगह इस चमन में अता हुई ।
वही जीने मरने की क़ैद से,
बे रोक टोक रिहा हुआ ॥
तेरी खुशनसीबी है केवला,
तेरा इस तरफ़ को जो मन चला ।
ज़रा जल्दी जल्दी क़दम उठा,
दरे बाग़ है वह खुला हुआ ॥

—:*:—

° बरकत ।

श्री हंसराज आर्य ट्रस्ट बरेटा ( जाखल मंडी ) का

# ** परिचय **

महाशय हंसराज जी आर्य का जन्म सन् १८६७ ई० में हुआ था। यह आरम्भ से ही पवित्र विचारों वाले तथा वैदिक धर्म के प्रेमी थे। आरम्भ से ही उनकी रुचि धार्मिक कार्यों में रही थी। साथ ही नेक कमाई में ही विश्वास रखते थे। पहिले पहल आपने एक ग्राम ठेके पर लिया और खेती करवानी आरम्भ की। आपने इसमें अच्छी सफलता प्राप्त की तथा पर्याप्त धन कमाया परन्तु बाद में मज़ारों के लड़ाई झगड़ों के ख्याल से यह काम छोड़कर आर्य अनाथालय भिवानी में बच्चों की सेवा का कार्य अपने जिम्मे लिया। नित्य के सन्ध्या हवन तथा सत्संग के कारण आपके धार्मिक विचार और भी दृढ़ हो गये। चार पांच साल वहाँ काम करने के पश्चात् आपने बरेटा मंडी में ला० मोहनलाल श्रद्धाराम के नाम से आढ़त की दुकान खोल ली, बाद में उसका नाम ला० श्रद्धाराम भगवानदास हो गया। क्योंकि मन में सचाई, ईमानदारी घर चुकी थी इस कारण इस काम में पर्याप्त लाभ हुआ। थोड़े काल पश्चात् ही आपने अपनी नेक कमाई में से सोलह हज़ार रुपये की राशि सुरक्षित करके उपर्युक्त ट्रस्ट बना दिया जिसकी ४मई सन् १९६०. को मानसा तहसील में रजिस्ट्री हो चुकी है। बाद में आठ हजार रुपये मिलाकर ट्रस्ट की राशि को २४ हज़ार रुपया कर दिया गया। आपने हंसराज आर्य एण्ड कम्पनी के नाम से कपड़े की दुकान खोली जो कि इलाक़ा में 'एक दाम' वाली दुकान के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

आप ने बड़े ज़ोर शोर से वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य अपने ज़िम्मे लिया और बरेटा मंडी में एक विशाल आर्य समाज मन्दिर बनाने में सफलता प्राप्त की, जिसका मूल्य इस समय एक लाख रुपया आंका जाता है। ट्रस्ट की ओर से बरेटा मंडी में दयानन्द धर्मार्थ औषधालय भी खोला गया था। योग्य तथा निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दी जाती है। बिहार पीड़ितों के लिये भी पर्याप्त धन भेजा गया था। बेकार विधवाओं तथा निर्धनों को भी समयानुसार सहायता दी जाती है तथा सर्दियों में रजाइयाँ आदि भी बांटी जाती हैं। महाशय जी की धर्मपत्नी डाक्टर रामदेवी जी भी महाशय जी की तरह धार्मिक विचार रखती हैं। महाशय जी का देहान्त ३०-७-७१ को हो गया था। उनके बड़े भ्राता ला० मोहनलाल जी का देहान्त भी १२-५-७३ को हो चुका है।

ट्रस्ट की ओर से वैदिक धर्म का प्रचार भी भिन्न २ तरीकों से किया जाता है। समय २ पर भजन मण्डली तथा पुस्तकों द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार किया जाता है। पांच साल पूर्व इस पुस्तक का दूसरा संस्करण ट्रस्ट की ओर से छपवाया गया था। वह समाप्त होने पर अब यह तीसरा संस्करण छपवाया जा रहा है। इसके ट्रस्टी निम्नलिखित हैं :—

(१) महाशय प्रकाशचन्द गुप्त, जाखल मण्डी — प्रधान
(२) श्रीमती डा० रामदेवी, बरेटा मण्डी — उप-प्रधान
(३) बाबू बनारसीदास बी. ए., बरेटा मण्डी — मन्त्री
(४) बाबू बृजलाल गुप्त, प्रधान आर्य समाज, टोहाना
(५) महाशय कुन्दनलाल गुप्त, धुरी
(६) श्री तरसेम आर्य, मन्त्री आर्य समाज, गोनियाना मण्डी

विनीत—

प्रकाशचन्द गुप्त

प्रधान ट्रस्ट

पूज्य श्री स्वामी [torn] ानन्द जी महा

—: की :—

# आध्यात्मिक पुस्तकें

१. सन्त-वचन-संग्रह प्रथम पुष्प ... मूल्य १।) रु०

२. सन्त-वचन-संग्रह द्वितीय पुष्प ... मूल्य १) रु०

३. सन्त-वचन-संग्रह तृतीय पुष्प ... मूल्य १) रु०

४. सन्त-वचन-संग्रह चतुर्थ पुष्प ... मूल्य १) रु०

५. सन्त-वचन-संग्रह पंचम पुष्प ... मूल्य १) रु०

६. सन्त-वचन-संग्रह छटा पुष्प ... मूल्य १) रु०

७. प्रभु प्रार्थना ... ... ... मूल्य १।) रु०

८. शिक्षाप्रद कहानियाँ ... ... मूल्य १।) रु०

मिलने के पते—

(१) वानप्रस्थाश्रम पुस्तकालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)

(२) गुप्ता एण्ड कम्पनी, टोहाना, जि० हिसार।

(३) गुप्ता एण्ड कम्पनी, खारी बावली, दिल्ली–६